

₹15.00

पाञ्चजन्य

17 जून, 2018

ज्येष्ठ कृष्ण 11
(युगाब्द 5120), वि.सं. 2075



महाराणा की महागाथा

कौन थे महाराणा प्रताप? कैसी थी
उनकी राज्य व्यवस्था और सैन्य
समझ-बूझ? कैसा था हल्दीघाटी का
समर और कौन था इस अत्यंत
चर्चित युद्ध का नायक? महाराणा
प्रताप जयंती पर इतिहास में दबे
तथ्यों को सामने रखता पाञ्चजन्य
का विशेष आयोजन



www.panchjanya.com

<http://twitter.com/epanchjanya>

<http://www.facebook.com/pages/Panchjanya>

अपनी बात

अपने सम्मान, सत्य और मनुष्यता के लिए प्राण देने वाला ही
वास्तविक विजेता होता है। – हरिकृष्ण प्रेमी (अमर आन, पृ. 93)

महाराणा की महागाथा

पढ़े-लिखे लोग भी अक्सर जिस एक पहेली पर गच्चा खा जाते हैं, वह भारतीय इतिहास से जुड़ा एक छोटा-सा सवाल है।

हम कितने वर्ष गुलाम रहे? इस प्रश्न का उत्तर तलाशते हुए ज्यादातर लोग 1947 की ताजा यादों तक ही लौट पाते हैं जबकि तथ्यतः यह बात गलत है।

वास्तव में यह 1192 ई. में तराइन का दूसरा युद्ध था जिसने पहली बार भारतीयों पर किसी विदेशी वंश का 'शासन' थोपा।

राजकुमारी संयोगिता के 'हरण' से तिलमिलाए जयचंद और एक वर्ष पहले तराइन की पहली लड़ाई में मुंह की खाने वाले मोहम्मद गौरी की छटपटाहट का मिलना वह संयोग था जिसने पहली बार भारत में विदेशी राज के लिए रास्ता बनाया। हमले पहले भी हुए, इनकी खंगाल करते हुए हम 712 ई. में सिंध में राजा दाहिर के राज्य पर मुहम्मद बिन कासिम के हमले तक जा सकते हैं, किन्तु यह ध्यान रखने वाली बात है कि उन हमलों में आक्रमण और लूट भले रही हो, भारत में किसी विदेशी शासक का बीज नहीं जमा।

इस मायने में तराइन का दूसरा युद्ध गद्दारी, धोखे, कुछ लोगों को एक ओर कर समाज को बांटने और फिर जीत हासिल कर इस समाज, इस देश, भारत की भारतीयता को रौंदने और विदेशी वंश का राज स्थापित करने का पहला मामला लगता है।

सो जाहिर है, भारत की स्वतंत्रता और इसके लिए संग्राम अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ने जितनी नई बात नहीं है, जैसा कि आमतौर पर बताया-पढ़ाया जाता है। इस बात की अनदेखी कैसे की जा सकती है कि अंग्रेजों से पहले इस देश और संस्कृति पर

मुस्लिम आक्रमण हुआ था। उन्होंने भी आठ सौ साल हम पर शासन किया।

इस निरंतर गुलामी के खिलाफ हिन्दुओं का अनवरत संघर्ष चलता ही रहा। मेवाड़ के महाराणा प्रताप इस अनवरत चले स्वतंत्रता संग्राम के अनूठे नक्षत्र थे।

कुनबे से भी बढ़कर करनी बोलती है, और इसीलिए 'हिन्दुआ सूरज,' महाराणा का यह सर्वनाम स्वतंत्रता और सम्मान का उद्घोष बना। उनका नाम यानी स्वतंत्रता के लिए जान झोंकने वाला शौर्य, कभी पराजित न होने वाली जिजीविषा का पर्याय। मुगलकाल भारतीय इतिहास का काला अध्याय था।

देश मुगल साम्राज्य की बढ़ती हुई शक्ति के आगे असहाय हो चुका था, उस समय तो हिन्दुओं के लिए स्वतंत्रता की बात सोचना ही पागलपन था। अकबर ने भारी ताकत और कूटनीति के जरिये देश में सबसे बड़ा मुगल साम्राज्य खड़ा किया था। सारे हिन्दू राजाओं को उसने बड़े-बड़े पद देकर अपने अधीन कर लिया था। इस तरह वह मुगल





सल्तनत को हिन्दू मुस्लिमों के मिले-जुले साम्राज्य के रूप में पेश कर रहा था मगर उसकी असली मंशा मुगल सल्तनत को ही मजबूत बनाने की थी। लेकिन राणाप्रताप अकबर की चालबाजी को भलीभाँति जानते थे। आखिरकार शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के सामने सब झुक गए मगर राणा प्रताप की तलवार कभी नहीं झुकी। विदेशी गुलामी के इस महासागर में भी मेवाड़ हिन्दू प्रतिरोध और स्वतंत्रता का जगमगाता द्वीप बना रहा। प्रताप के बाद सोलहवीं सदी में मुगलों को बहुत सफल चुनौती महाराष्ट्र से जुझारू योद्धा छत्रपति शिवाजी द्वारा मिली। यह ध्यान देने वाली बात है कि उन्होंने राज्याभिषेक से पहले अपने को सिसोदिया वंश का ही बताया था जो प्रताप का वंश था। यानी कहा जा सकता है कि महाराणा प्रताप का संघर्ष और नायकत्व ऐसा था जो आने वाली सदियों में आजादी के दीवानों को हमेशा प्रेरणा देता रहा।

देशभर के साहित्यकारों ने प्रताप की गौरव गाथा लिखी है। हिन्दी में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे साहित्य शिरोमणियों ने महाराणा का गौरवगान किया है। महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास में वीरता और राष्ट्रीय स्वाभिमान के पर्याय हैं। वे एक कठिन और उथल-पुथल भरे काल-खंड में पैदा हुए थे, जब मुगलों की सत्ता समूचे भारत में छाई हुई थी और मुगल सम्राट अकबर की तेजी की तूती बोल रही थी। लेकिन महाराणा प्रताप इस तेजी के पीछे छिपी साम्राज्यवादी आकांक्षा के विरुद्ध थे, इसलिए उन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की।

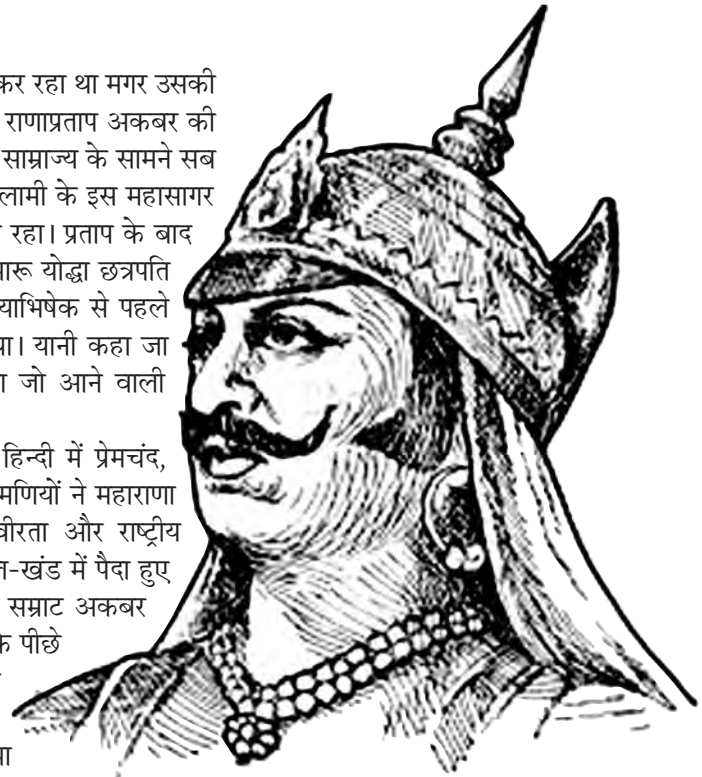
परिणामस्वरूप अकबर उनके विरुद्ध युद्ध में उतरा। इस प्रक्रिया में महाराणा प्रताप ने जिस वीरता, स्वाभिमान और त्यागमय जीवन का वरण किया, उसी ने उन्हें एक महान लोकनायक और वीर पुरुष के रूप में सदा-सदा के लिए भारतीय इतिहास में प्रतिष्ठित कर दिया। तीस साल तक संघर्ष कर मेवाड़ में स्वतंत्रता की अलख जगाए रखने वाले महाराणा की वीरता के किस्से आप सुनेंगे तो इस गर्वीले नायक के प्रति श्रद्धा से भर उठेंगे। मगर इस आजादी के मतवाले योद्धा के खिलाफ हमारे इतिहास ने बड़ा अन्याय किया है।

इतिहास को समग्र रूप में देखे बिना महाराणा प्रताप का जो एकांगी चित्रण इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में हुआ है, वह लोक ख्याति और तथ्यों से परे तथा मुगलिया दृष्टिकोण से प्रभावित लगता है। दिलचस्प बात यह है कि अकबर और राणा प्रताप के बीच हुए हल्दीघाटी के युद्ध में राणा प्रताप की कथित हार जिस आग्रह से यह इतिहासकार बताते हैं, उसे खुद अकबर के दरबारी इतिहासकारों तक का लेखन नकारता है।

महाराणा ने अकबर की कथित महानता को मिट्टी में मिलाते हुए सारे मेवाड़ पर कब्जा कर लिया था, यह अनूठी बात शातिर तरीके से दबा दी जाती है। चे-खेरा का नाम जपने और उसे गुरिल्ला युद्ध का पुरोधा बताने वाले महाराणा के मारक दस्तों की छापामार शैली का जिक्र भला क्यों करना चाहेंगे?

जयचंद की गद्दारी के बूते पृथ्वीराज को पराजित करने की मुहम्मद गौरी की चाल के बरअक्स जब महाराणा के लिए जान की बाजी लगाते भीलों की कहानियाँ और एकजुट समाज का चित्र सामने आता है तो चंद इतिहासकार उस पर धूल डालने लगते हैं।

ऐसे में प्रताप जयंती पर पाञ्चजन्य का यह महा-आयोजन महाराणा के संघर्षपूर्ण जीवन के हर पहलू से साक्षात्कार कराएगा। इतिहास पर पड़ी धूल हटाता, तथ्यों को सामने रखता हमारा यह प्रयास आपको कैसा लगा, बताइएगा जरूर।



हिन्दी में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे साहित्य शिरोमणियों ने महाराणा का गौरवगान किया है। महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास में वीरता और राष्ट्रीय स्वाभिमान के पर्याय हैं। वे ऐसे काल-खंड में पैदा हुए थे, जब मुगलों की सत्ता समूचे भारत में छाई हुई थी, अकबर की तूती बोल रही थी। लेकिन महाराणा इसके पीछे छिपी साम्राज्यवादी आकांक्षा के विरुद्ध थे, इसलिए उन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की।


@hiteshshankar





शौर्य के प्रतीक महाराणा

अकबर ने शक्ति और कूटनीति के जरिये देश में मुगल साम्राज्य खड़ा किया। उसने सभी हिन्दू राजाओं को अपने अधीन किया। लेकिन गुलामी के इस दौर में महाराणा प्रताप ही ऐसे थे, जिन्होंने हिन्दू स्वाभिमान का दीप जलाये रखते हुए अकबर को चुनौती दी। मेवाड़ स्वतंत्र हिन्दू राज्य बना रहा। यही वजह है कि महाराणा प्रताप हिन्दू प्रतिरोध के प्रतीक हैं

■ ओम प्रकाश

महाराणा

कुंभा के समय (1433-1468) चित्तौड़ भारत की राजधानी के रूप में विकसित हो गया था। यह युग कला शिल्प, स्थापत्य, साहित्य, निर्माण से परिपूर्ण था। मेवाड़ राज्य की सीमाओं का विस्तार इसी कालखंड में हुआ। महाराणा सांगा के समय (1509-1528) देशभर के हिन्दू राजाओं ने अपने नायक के रूप में मेवाड़ का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था। खानवा के युद्ध में शामिल राज्य इसके प्रमाण हैं।

बाबर के खिलाफ युद्ध में राणा सांगा की हार ने देश का भाग्य बदल दिया और दिल्ली में मुगल सत्ता की स्थापना हुई, जो बाबर से अकबर तक विस्तारित होकर दृढ़तर होती गई। राजपूताना के सभी राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। इतना ही नहीं, अपने पवित्र कुलों की कन्याओं को





अकबर के हरम में भेज दिया। अत्याचारों का दौर चल पड़ा। मेवाड़ को छोड़ सभी दिल्लीश्वर को जगदीश्वर मान बैठे। ऐसे समय में महाराणा प्रताप का उदय हुआ।

महारानी जयवन्ती बाई के गर्भ से ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया, रविवार, विक्रम संवत् 1597 (9 मई, 1540) को कुम्भलगढ़ में महाराणा प्रताप का जन्म हुआ। चण्डू ज्योतिषी ने प्रताप की जन्म पत्रिका तैयार की। प्रताप का जीवन राजसी वैभव से अप्रभावित, सादगी, सरलता और विनम्रता लिए हुए था। वे उच्च चरित्र के व्यक्ति थे। बचपन में पौराणिक कथाएं, देश के लिए जीने की वृत्ति का उपदेश सुनकर ही प्रताप तैयार हुए। राजकुमारों के समान ही शिक्षा-दीक्षा हुई। शस्त्र विद्या में निपुण प्रताप सिंह अपने आसपास के इलाके में 'कीका' नाम से विख्यात थे। इतिहासकार राजशेखर व्यास लिखते हैं कि प्रताप लगभग दस वर्ष तक कुम्भलगढ़ में रहे और अधिकांश समय भीलों के साथ व्यतीत किया। भीलों के साथ उनकी इतनी घनिष्टता थी कि वे मात्र महाराणा उदयसिंह के पुत्र न होकर प्रत्येक भील परिवार के पुत्र तथा राज परिवार के राजकुमार न रहकर मेवाड़ के व्यापक भील समुदाय के राजकुमार बन गए। मेवाड़ के वनवासी इलाकों में लोक संबंधों की घनिष्टता इतनी प्रगाढ़ हो गई थी कि हर रोज भील परिवारों के वृद्ध, प्रौढ़, युवक, पुरुष और महिलाएं प्रताप के अपने घर आने की प्रतीक्षा करते थे। उनके आने पर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव कर स्वर्गिक आनंद की प्राप्ति करते थे।

कम आयु में गढ़ जीते

प्रताप 12 वर्ष की उम्र में 1552 में कुम्भलगढ़ से चित्तौड़गढ़ आए और वहां तलहटी में झालीमहल (पाडनपोल के पास) में रहकर शस्त्र प्रशिक्षण, राजनीतिक दांव-पेच इत्यादि सीखने लगे। उनके गुरु सलूम्बर के रावत किसनदास थे। अब तक प्रताप को युवराज का पद प्राप्त हो गया था। इसी समय अपनी मित्र मंडली के साथ



कुम्भलगढ़ के किले में बीता था प्रताप का बचपन

उन्होंने जयमल मेड़ितिया से युद्ध व्यूह कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। मात्र 17 वर्ष की अल्पायु में प्रताप ने वागड़, छप्पन और गोड़वाड़ के इलाके जीत लिए। इसी समय उनका विवाह मामरख पंवार की पुत्री अजबादे कुंवर से हुआ। 16 मार्च, 1559 को अजबादे कुंवर की कोख से ज्येष्ठ पुत्र के रूप में अमर सिंह ने जन्म लिया। आगे चलकर महाराणा प्रताप ने सैन्य प्रशिक्षण और सैनिकों की भर्ती के प्रयास शुरू किए, जिसमें भीलू राणा पूंजा का विशेष योगदान रहा। महाराणा प्रताप के राज्यारोहण के समय ही भीलू राणा अपने सैनिकों के साथ पूंजा पानरवा से आ गया था। हल्दीघाटी युद्ध में वह 500 सैनिकों के साथ पहाड़ों में तंदावल दस्ते में तैनात था। प्रताप की सेना के गोगुन्दा से कोत्यारी के जंगलों से जाने पर मानसिंह की सेना को घेरने, रसद सामग्री

लूटने तथा आवरगढ़ में अस्थायी निवास स्थापित कर प्रताप एवं उनके परिवार की सुरक्षा का जिम्मा भीलू राणा पूंजा ने अपने ऊपर लिया था। भीलू राणा पूंजा तथा उसके भील सैनिकों की कर्तव्यनिष्ठा, रण-कुशलता तथा छापामार युद्ध प्रणाली की दक्षता के कारण ही प्रताप, अकबर और उसके सेनानायकों के भीषण आक्रमणों का सामना कर सके। चावण्ड में राजधानी की स्थापना के समय तक प्रताप को भीलों का अतुलनीय योगदान प्राप्त था। मेवाड़ ने इसी कारण अपने राज चिह्न में एक ओर राजपूत तथा दूसरी ओर भील सैनिक का चित्र देकर उनके योगदान को मान्यता प्रदान की है। प्रताप के देहावसान के बाद भीलू राणा ने अमरसिंह को भी सैन्य सहायता उपलब्ध कराई थी। 1610 में उसका देहावसान हो गया था। प्रताप के जन-जागरण के कारण

महाराणा प्रताप के पास रामप्रसाद लूणा, खांडेराव और चक्रबाप नामक हाथी थे। हल्दीघाटी के युद्ध में रामप्रसाद ने अकबर की सेना के 14 हाथियों को मार डाला। तब व्यूह रचना कर महावत को मारकर शत्रुओं ने उसे वश में किया।



तथ्य यह है कि...

हल्दीघाटी युद्ध में महाराणा प्रताप की विजय हुई थी। मेवाड़ में उपलब्ध शिलालेखों, ख्यातों, प्रशस्तियों में प्रताप की विजय का वर्णन किया गया है। इनमें सूरखंड (सुरपणखेड़ा) का शिलालेख, जगन्नाथराय (जगदीश) मंदिर उदयपुर की प्रशस्ति, वैद्यनाथ मंदिर प्रशस्ति (सीसारमा), रणछोड़ भट्ट अमरकाव्यम् (सर्ग-16, श्लोक सं. 35), राज रत्नाकर: महाकवि सदाशिव (सप्तम सर्ग, श्लोक 42) आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा, आधुनिक इतिहासकारों ने भी हल्दीघाटी युद्ध में महाराणा प्रताप की विजय का उल्लेख किया है। अल बदायूनी के अनुसार हल्दीघाटी युद्ध में दोनों पक्षों के वीरों की हानि हुई थी। युद्ध में करीब 500 वीर रणखेत रहे जिनमें मुसलमानों की संख्या अधिक थी।

मेवाड़ के प्रत्येक परिवार से सैनिक भर्ती प्रारम्भ हो गई। पड़ोसी राज्य से भी सैनिक और आर्थिक सहायता मिलने लगी। आगामी युद्ध की गंभीरता का आकलन कर प्रताप दिन-रात तैयारियों में व्यस्त हो गए।

उधर, अकबर को अपने कूटनीतिक प्रयासों में जब असफलता हाथ लगी तो वह स्वयं 7 मार्च, 1576 को सेना लेकर अजमेर पहुंचा। यहां उसने युवराज मानसिंह को प्रताप के विरुद्ध आक्रमण के लिए अपना प्रधान सेनापति नियुक्त किया। मानसिंह की सेना में आसफ खां, गाजी खान, माघोसिंह, राय लूणकरण, मुजाहिद बेग, मिहत्तर खान आदि लोग थे।

मानसिंह 3 अप्रैल, 1576 को अपनी सेना लेकर अजमेर से बदनोर-भीलवाड़ा होकर माण्डलगढ़ पहुंचा तथा दो मास तक वहीं डेरा डालकर महाराणा प्रताप के आक्रमण का इंतजार करने लगा। मई के अंतिम सप्ताह में महाराणा प्रताप भी कुम्भलगढ़ से गोगुन्दा आ गए तथा युद्ध की भावी रणनीति पर विचार करने के लिए अपने सरदारों, सामन्तों को आमंत्रित



युद्धभूमि में तलवार चमकाते राणा।
पृष्ठभूमि में चित्तौड़ का विजयस्तंभ

किया। इस बैठक में झाला मानसिंह, पूंजा भील, हकीम खां सूरी, झाला बीदा, भामाशाह, रामशाह तंवर एवं उनके तीन पुत्र, राव संग्राम सिंह, रामदास मेड़तिया, कल्याण सिंह चूड़ावत, दुर्गादास, हरिदास चौहान, नाथा चौहान, डूंगर सिंह पंवार,

शेरखान चौहान, प्रयागदास झखरोर, आलम राठौड़, नंदा प्रतिहार, महाराणा प्रताप के मामा मानसिंह सोनगरा, कूपा के पुत्र जयमल और भामाशाह, ताराचंद आदि प्रमुख लोग उपस्थित थे। चित्तौड़ युद्ध के पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि ऐसी शूरवीरता की कोई सार्थकता नहीं, जिसके कारण स्वतंत्रता ही कायम न रहे। इसलिए उनका विचार यह बना कि स्वतंत्रता की रक्षा की दृष्टि से एवं संपूर्ण युद्ध में अंतिम सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति को कायम रखकर युद्ध की स्थिति को देखते हुए अगर बचकर निकलना आवश्यक हो तो उसको कायरता नहीं मानना चाहिए। यही मान्यता 'छापामार युद्ध नीति' के रूप में विकसित हुई। उदयसिंह का चित्तौड़ से उदयपुर के पहाड़ों में जाना, हल्दीघाटी युद्ध में प्रताप का पहाड़ों में अपनी सेना को ले जाना तथा बाद में गोगुन्दा खाली करके कोल्यारी के पहाड़ों में जाना और शाहबाज खान के आक्रमण के समय कुम्भलगढ़ दुर्ग खाली करके जाना, इसके उदाहरण हैं। इसी नीति के कारण वे अन्ततोगत्वा सफल रहे। चित्तौड़ में हुए जौहर तथा उसके 30,000 निर्दोष लोगों की हत्या के कारण सभी सरदारों के मन में अकबर के खिलाफ प्रतिशोध की भावना थी। वे प्रत्यक्ष तौर पर मैदान में युद्ध कर शत्रु का रक्त बहाना चाहते थे, परन्तु महाराणा प्रताप तथा तंवर राजा रामशाह शत्रु को पहाड़ों में घेरकर मारना चाहते थे। शत्रु सेना के पास सैन्य बल अधिक था और तोपखाना भी था, जबकि मेवाड़ी सेना मैदानी युद्ध की अभ्यस्त नहीं थी। इस कारण युद्ध छापामार नीति से ही जीता जा सकता था। 'राणा रासो' में लिखा है—

कांठो दे गिरवर गहो,
मांठो औरूं विचारूं।
फेरि घेरि चहुं ओर ते,
मीरन देहं मारूं॥

असल में देखा जाए तो हल्दीघाटी की लड़ाई दोनों युद्धनीतियों का मिश्रित रूप



दिवेर युद्ध में मुगलों की पराजय के बाद अकबर ने 1584 में जगन्नाथ कच्छवाहा को बड़ी सेना देकर भेजा, किन्तु वह भी असफल होकर लौट गया। इससे अकबर निराश हो गया और मेवाड़ से अपना ध्यान हटा लिया।



थी। वह खुला युद्ध भी था, जिसमें मेवाड़ी वीरों को पर्वतीय भाग से निकलकर तेज आक्रमण करने एवं खुलकर अपना शौर्य एवं पराक्रम प्रदर्शित करने का अवसर मिला। दूसरी ओर कड़े प्रतिकार की स्थिति उत्पन्न होने एवं शत्रु द्वारा पीछा करने की स्थिति में हल्दीघाटी में प्रवेश कर अपनी रक्षा करते हुए तीव्र गति से पर्वतीय भाग में लौट जाने की युद्ध प्रणाली से भी युक्त था।” उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि घाटी से निकलकर एक बड़े छापे के रूप में मुगल सेना को परास्त कर पुनः पहाड़ों से लौटकर मोर्चाबंदी करना, अपने जन-धन की रक्षा करते हुए शत्रु के जन-धन और सैन्य सामग्री को लूटना, यह युद्ध परिषद में निर्णय हुआ। उधर, काफी प्रतीक्षा के बाद मानसिंह मांडलगढ़ से निकला और नाथद्वारा के पास बनास नदी के किनारे मोलेला ग्राम में पड़ाव डाल दिया। प्रताप ने भी अपनी सेना को गोगुन्दा से लोसिंग की पहाड़ियों में लाकर डेरा डाला। प्रताप ने सुरक्षा की दृष्टि से मायरा की गुफा में अपना शस्त्रागार स्थापित किया तथा पीछे रनिवास में महिलाओं की सुरक्षा का दायित्व अपने 17 वर्षीय पुत्र अमरसिंह को सौंपा।

जान बचाकर भागे मुगल सैनिक

अब प्रताप ने अपनी युद्ध नीति में थोड़ा सा बदलाव किया। उन्होंने रक्षात्मक युद्ध की बजाय आक्रामक युद्ध नीति अपनाई। अब्दुल रहीम खानखाना के असफल होकर लौट जाने के पश्चात प्रताप ने भामाशाह, उसके भाई ताराचन्द और अपने पुत्र अमरसिंह को साथ लेकर कुम्भलगढ़ से 30 मील उत्तर-पूर्व में 1552 को विजयादशमी के दिन दिवेर ग्राम में आक्रमण किया, जहां अकबर का चाचा सुल्तान खां मुख्तार था। सुल्तान खां ने आसापास के मुगल थानों से सेना एकत्रित की। दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। सुल्तान खां हाथी पर बैठकर आया तो महाराणा प्रताप के सैनिकों ने हाथी के पांव काट दिए। इसके बाद वह



संकरे रास्ते से बाहर निकलते महाराणा

घोड़े पर बैठकर आया, तब अमरसिंह ने भाले का ऐसा जोरदार प्रहार किया कि एक ही वार में सुल्तान खां, उसके घोड़े तथा टोप-बख्तर के टुकड़े-टुकड़े कर उसे जमीन में गाड़ दिया। ‘अमर काव्य’ के अनुसार भाला सुल्तान खां की छाती में ऐसा लगा कि वह खींचने पर भी नहीं निकला। अमरसिंह ने ठोकर से उसे खींच निकाला। मरते-मरते सुल्तान खां ने पानी मांगा तो महाराणा प्रताप ने उसे गंगाजल से भरा स्वर्ण कलश ले जाकर दिया।

दूसरी ओर अकबर ‘मीर’ की उपाधि हासिल करने के लिए चित्तौड़ विजय के दौरान 30,000 निरीह, निर्दोष, निहत्थे लोगों का कत्लेआम करवाता है। महाराणा प्रताप की दिवेर की जीत को कर्नल टॉड ने ‘मैराथन’ की संज्ञा दी है। दिवेर विजय की ख्याति चारों ओर फैल गई और मुगल सैनिक अपनी चौकियां खाली करके भागने लगे। जो बच गए थे, उनका वहीं पर सफाया कर दिया गया। महाराणा प्रताप के लिए दिवेर विजय नव विजय अभियान का शुभ एवं कीर्तिदायी



युद्ध क्षेत्र में राणा के सैनिकों का अदम्य साहस और जौहर करती मेवाड़ी रानियां

शुभारम्भ था। इसके बाद तो उन्होंने सारी शाही चौकियों को पुनः अपने कब्जे में ले लिया तथा छप्पन के इलाके एवं डुंगरपूर-बांसवाड़ा को भी जीत लिया। उस समय पूरे मेवाड़ पर प्रताप का अधिकार हो गया था। प्रताप ने 1585 में चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया तथा यहीं से सभी गतिविधियां संचालित करने लगे। उधर, दिवरे युद्ध में मुगलों की पराजय के बाद अकबर ने 1584 में जगन्नाथ कच्छवाहा को बड़ी सेना देकर भेजा, किन्तु वह भी असफल होकर लौट गया। इससे अकबर निराश हो गया और मेवाड़ से अपना ध्यान हटा लिया।

1576 से 1585 तक अकबर ने सात बार अपने सेनापतियों को समस्त संसाधनों से युक्त बड़ी सेना के साथ महाराणा को पराजित करने के लिए भेजा। एक बार तो

वह खुद भी आया। यही नहीं, अकबर ने अपने सेनापतियों को धमकी भी दी कि असफल होने पर उनके सिर कलम करवा देगा। इसके बावजूद अकबर के सेनापतियों का हर आक्रमण असफल रहा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संघर्ष के इस दशक में (1576-1585) अकबर हर मामले में महाराणा प्रताप से पराजित हुआ। प्रताप अन्ततोगत्वा अपनी छापामार युद्धनीति के कारण शत्रु को परास्त करने में सफल होकर स्वयं अविजित रहे और स्वतंत्रता की अलख जलाकर विदेशी दासता के बंधनों से मातृभूमि को मुक्त रख सके।

चावण्ड का वैभवकाल

पूर्ण निश्चिंतता नहीं होने और मेवाड़ में शत्रु को सुविधा नहीं देने की नीति के अनुसरण में अपने हाथों अपनी बस्तियां,

बाग, खेत आदि उजाड़ दिए जाने और मुगल सेना द्वारा सालों तक निर्मम लूट तथा तबाही मचाने के कारण मेवाड़ के पुनर्निर्माण का प्रयास कितना कठिन था, इसका अनुमान लगाने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए। यह महाराणा प्रताप का सर्वाधिक प्रशंसनीय पक्ष है। जेम्स टॉड से लेकर दूसरे इतिहासकारों ने प्रताप द्वारा उदयपुर की पुनः प्राप्ति को इतना महत्वहीन माना कि उसका उल्लेख करना भी अनावश्यक समझा। हाल तक के इतिहासकारों, जैसे- डॉ. वी.एस. भार्गव (राजस्थान, पृष्ठ 247), जिन्होंने राणा के विरुद्ध अंतिम अभियान के बाद दस पंक्तियों में ही प्रताप के जीवन को समेट दिया है, जबकि इसमें दस साल लगे थे। इन वर्षों के दौरान महाराणा प्रताप के जीवन पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है, लेकिन अब अंधकार से प्रकाश पुंज फूटा है और उनके विषय में विश्वसनीय जानकारी सामने आने लगी है। इस दिशा में डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने प्रारम्भिक प्रयत्न किए हैं। शर्मा (मेवाड़, पृष्ठ 103-105) लिखते हैं- “ऐसा लगता है कि 1585 का वर्ष प्रताप के जीवन में अत्यंत महत्व का हो गया। इस समय तक मुगल संकट समाप्त हो गया था। व्यावहारिक दृष्टि से जगन्नाथ कच्छवाहा का आक्रमण अंतिम महत्वपूर्ण आक्रमण था, क्योंकि मेवाड़ में मिली लगातार पराजय का प्रभाव अंतिम साम्राज्य के शेष भागों पर पड़ने लगा था। इस कारण अकबर पंजाब तथा पश्चिम-उत्तर सीमान्त प्रदेश के अधिक महत्व के प्रश्नों से निपटने में लग गया। महाराणा प्रताप ने इस समय का अच्छा उपयोग किया। उन्होंने मुख्यतः मेवाड़ के उत्तर-पश्चिम, उत्तर-पूर्व तथा मध्य भाग में फैली मुगल चौकियों पर हमले किए। अपने पुत्र कुंवर अमरसिंह तथा भामाशाह, ताराचंद आदि को साथ लेकर उन्होंने 36 स्थानों से मुगल थाने हटा दिए, जिसमें मुख्य थे- उदयपुर, मोही, पानरवा, गोगुन्दा, माण्डल। इस तरह महाराणा प्रताप ने मेवाड़ के उन



1580 में अकबर ने महाराणा पर आक्रमण के लिए अब्दुल रहीम खानखाना के नेतृत्व में बड़ी सेना भेजी। लेकिन अमर सिंह ने उसे लूट लिया और उसके पूरे परिवार को गिरफ्तार कर गोगुन्दा ले आए। महाराणा बहुत क्रोधित हुए और महिलाओं को ससम्मान उनके डेरे तक पहुंचाने को कहा।



हिस्सों को दोबारा हासिल कर लिया, जिन पर मुगलों का कब्जा था। उदयपुर स्थित कमिश्नर कार्यालय से प्राप्त एक प्राचीन लेख से स्पष्ट है। इस पर कार्तिक पूर्णिमा विक्रम संवत् 1685 (1588) की तिथि अंकित है और उसमें त्रिवेदी सार्दुलनाथ को जहाजपुर के निकट पंडेर की जागीर देने का उल्लेख है। इससे हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि उस समय तक महाराणा ने मेवाड़ का उत्तरी-पूर्वी प्रदेश भी हस्तगत कर लिया था और अपने विश्वसनीय अनुयायियों को जागीरें देकर पुनर्निर्माण के कार्य में व्यस्त थे। जैसा कि सुरखंड आलेख में बताया गया है, प्रताप ने इस

नहीं था। यह क्षेत्र व्यापारिक और राजनीतिक दृष्टि से गुजरात और मालवा के नजदीक पड़ता था। इस कारण इन क्षेत्रों के साथ संबंध स्थापित करने में महाराणा को सुविधा हुई। महाराणा ने मेवाड़ तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में एकता स्थापित किया। जागीरें बांटीं और नई भूमि व्यवस्था को लागू किया। बच्चे और स्त्रियां सभी जगह बेहिचक भ्रमण कर सकती थीं। बिना कारण स्वयं महाराणा प्रताप भी कभी किसी को दंडित नहीं करते थे। दंड की व्यवस्था समुचित होने के कारण चोरी-डकैतियां भी कम हो गई थीं। कुल मिलाकर संपूर्ण प्रदेश के आचरण में

युद्ध के मैदान में महाराणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंह ने भाले के एक ही वार से अकबर के चाचा सुल्तान खां मुख्तार का काम तमाम कर दिया था। सुल्तान खां मरणासन्न था और उसने पानी मांगा। उस समय महाराणा प्रताप ने गंगाजल से भरा स्वर्ण कलश ले जाकर उसे दिया।



समय का उपयोग 1885 में चावण्ड में अपनी राजधानी बनाने में किया। यह सुरक्षित स्थान था, जहां उनके लिए रहना और शासन व्यवस्था का संचालन करना सरल था। इसी अवधि में चावण्ड में महल और चामुण्डा माता मन्दिर बनवाए गए।

डॉ. देवीलाल पालीवाल (महाराणा प्रताप महान, पृष्ठ 68) लिखते हैं, “इस भांति प्रताप के शेष शांतिपूर्ण जीवनकाल में मेवाड़ ने सभी क्षेत्रों में उन्नति की और जब 1600 में अकबर ने पुनः मेवाड़ के विरुद्ध युद्ध शुरू किया, उस समय मेवाड़ पूरी तरह धन-धान्य से परिपूर्ण एवं खुशहाल था। उन्होंने जो संपत्ति और साधन अर्जित किए, उनके सहारे राणा अमरसिंह अगले 15 वर्षों तक मुगल सेना से लड़ता रहा।”

चावण्ड को नई राजधानी बनाने के बाद प्रताप ने शासन व्यवस्था में बदलाव किए और नई नियुक्तियां भी कीं। हालांकि राजधानी बाने के बाद भी चावण्ड सुरक्षित

नैतिकता आ गई थी। उनके कार्यकाल में कृषि उत्पादन और व्यापार में वृद्धि हुई। महाराणा केवल योद्धा और कुशल शासक ही नहीं थे, अपितु कला, शिल्प, साहित्य में भी उनकी रुचि थी। उनके समय ही नई राज्याभिषेक पद्धति विकसित हुई थी। महाराणा के समय चित्रकला का इतना विकास हुआ था कि उस विशेष चित्र शैली को ‘चावण्ड चित्रशैली’ के नाम से जाना जाता था। उनके चित्र आज भी संग्रहालय में मौजूद हैं। चावण्ड चित्र शैली को चावण्ड कलम और रागमाला के नाम से जाना जाता है। इसका प्रणयन निसारदी नामक मुस्लिम द्वारा किया गया जो मालवा से महाराणा प्रताप के पास आया था। उनके शासनकाल में चित्रकला के साथ-साथ साहित्य कला का भी सृजन हुआ। महाराणा स्वयं कवि थे। ‘पद्मिनी चरित्र’ और ‘दुरसा आहडा’ प्रताप के युग को आज भी अमर बनाए हुए है। चक्रपाणि,

राणा प्रताप की तलवार



चढ़ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल पानी को।
राणा प्रताप सिर काट काट,
करता था सफल जवानी को॥

कलकल बहती थी रणगंगा,
अरिदल को डूब नहाने को।
तलवार वीर की नाव बनी,
चटपट उस पार लगाने को॥

वैरी दल को ललकार गिरी,
वह नागिन-सी फुफकार गिरी।
था शोर मौत से बचो बचो,
तलवार गिरी तलवार गिरी॥

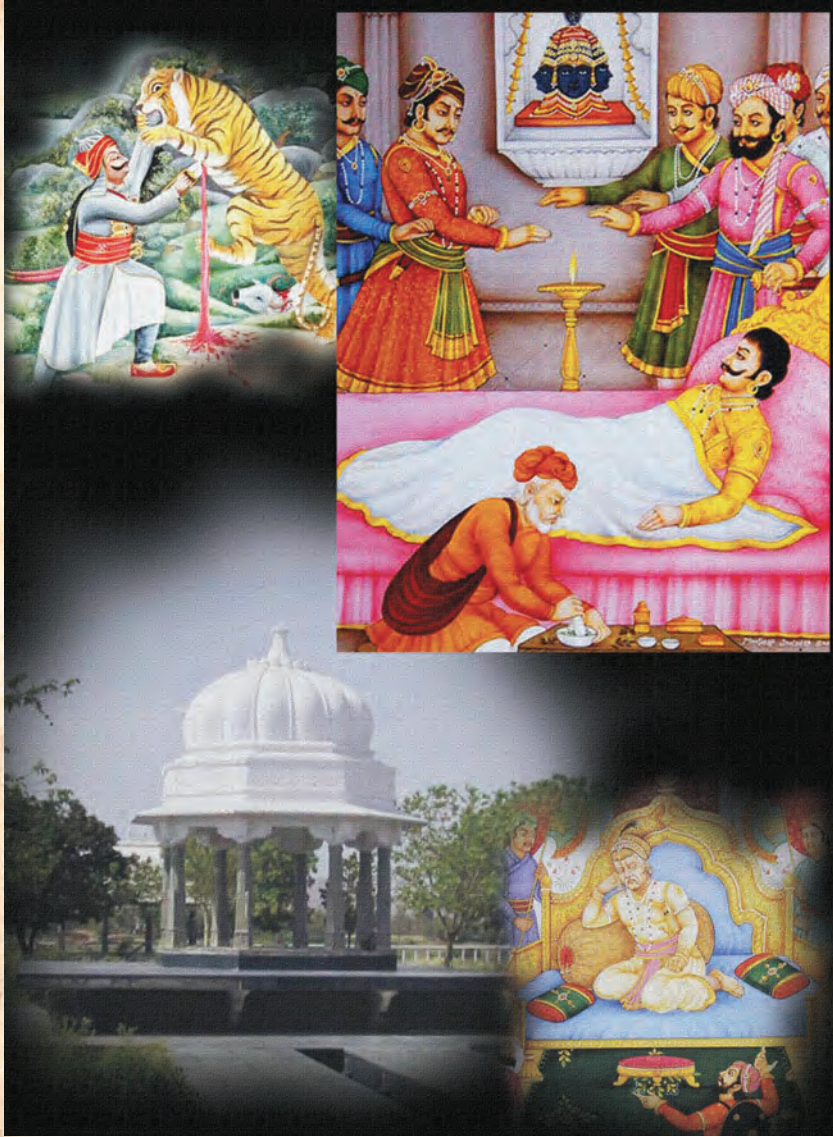
पैदल, हयदल, गजदल में,
छप छप करती वह निकल गई।
क्षण कहां गई कुछ पता न फिर,
देखो चम चम वह निकल गई॥

क्षण इधर गई क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई।
था प्रलय चमकता जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई॥

लहराती थी सिर काट काट,
बलखाती थी भू पाट पाट।
बिखराती अवयव बाट बाट,
तनती थी लहू चाट चाट॥

क्षण भीषण हलचल मचा मचा,
राणा कर की तलवार बढ़ी।
था शोर रक्त पीने को यह,
रण-चंडी जीभ पसार बढ़ी॥

■ श्याम नारायण पाण्डेय



बाघ को मारते हुए राणा और अस्वस्थ हो शैया पर चिकित्सा कराते राणा

रामा सांदु, हेमरतन सूरी जैसे साहित्यकार उनके साथ थे। इससे पूर्व ऐसा प्रयोगधर्मी शासक मेवाड़ को नहीं मिला, जिसने शोध और अनुसंधान के विशेष प्रयास किए हों। दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ मुहर्तमाला तथा तीसरा राज्याभिषेक पद्धति है। यहां ध्यान देने की बात है कि जहां तत्कालीन राजाओं और बादशाहों ने अपनी प्रशंसा में ग्रंथ, साहित्य की रचना करवाई, वहीं प्रताप ने अपनी प्रशंसा में दो शब्द भी नहीं

लिखवाए, बल्कि लोक कल्याणार्थ साहित्य की रचना करवाई। स्थापत्य की दृष्टि से किलों और महलों का निर्माण तथा कमोल, कमलनाथ, उबेश्वर, चावण्ड, जावर, बदराणा के मंदिरों का निर्माण आज भी इसके साक्षी हैं। चावण्ड में राजमहल, सामन्तों के रहने के लिए भवन तथा चामुण्डा माता का मन्दिर आज भी देखा जा सकता है। सड़क व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था, छापामार युद्ध पद्धति का विकास

अन्य उल्लेखनीय पहलू हैं।

इस प्रकार युद्ध के पश्चात शान्ति काल में महाराणा ने सभी दृष्टि से मेवाड़ का विकास किया। महाराणा प्रताप को युद्ध के पश्चात यह काल नहीं मिलता तो उनके व्यक्तित्व के इस रचनात्मक पक्ष का परिचय संसार को नहीं मिल पाता। वे युद्ध और शान्ति, दोनों कालों के सुयोग्य नेता थे। अब्दुल रहीम खानखाना, जिन्हें अकबर ने प्रताप को मिटाने भेजा था, महाराणा की प्रशंसा में दो पंक्तियां लिख गए हैं—

**धरम रहसी रहसी धरा,
खप जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरे,
राख निहचौ राण।।**

अर्थात् धर्म रहेगा, धरती रहेगी, परन्तु शाही सत्ता सदा नहीं रहेगी। अपने भगवान पर भरोसा करके राणा ने अपने सम्मान को अमर कर लिया है। इस अमरत्व को प्राप्त करने के लिए प्रताप को केवल 57 साल का जीवन और 25 साल का राजकाल मिला। राजस्थान का गौरव सूर्य उगने से पहले ही कुम्हला गया और अपने जीवन के भरे मध्याह्न में जमीन से लग गया। जेम्स टॉड से लेकर आधुनिक इतिहासकारों ने मृत्यु के समय महाराणा प्रताप की दुःखी मनस्थिति का वर्णन किया है तथा इसका कारण अमरसिंह की अयोग्यता बताया है। सरदारों के शपथ लेने पर उन्होंने शान्तिपूर्वक प्राण त्याग दिए। यह घटना वि.सं. 1653 माघ सुदी 11 की है। महाराणा प्रताप ने अपने अंतिम समय में मेवाड़ को पूर्ण स्वतंत्र (मेवाड़ के सभी 32 किले) कराकर, उसे सुव्यवस्थित कर लिया था। जो लक्ष्य या वीरव्रत लेकर वह चले थे, उन्हें आंखों के समक्ष पूरा करते हुए अत्यंत सहज रूप से अपने प्राण त्यागे थे। एक गोभक्षी बघेरे को स्वयं महाराणा प्रताप ने धनुष द्वारा तीर चलाकर मारा। तीर चलाते समय प्रताप की आंठों में खिंचाव आया, जिसके कारण वे अस्वस्थ हो गए। दो मास की अस्वस्थता के पश्चात उन्होंने देह त्यागकर गोलोकवास किया। उन्होंने



गोमाता की रक्षार्थ अपने प्राण समर्पित किए। मेवाड़ राजघराने की परम्परा थी कि पिता का स्वर्गवास होने पर युवराज दाहसंस्कार के समय उपस्थित नहीं रहते थे। लेकिन उस प्राचीन परम्परा को तोड़कर उनके पुत्र अमरसिंह ने अन्त्येष्टि क्रिया, जो श्रुति, स्मृति पुराण आदि शास्त्रोक्त विधि से आचार्य सम्मत थी, सम्पन्न की। पितृभक्त अमरसिंह के इस कृत्य को देखकर गुणवानों ने धन्य-धन्य कहा। महाराणा प्रताप का अंतिम संस्कार चावण्ड से 3 कि.मी. दूर बण्डोली ग्राम के पास स्थित केजड़ के तालाब में किया गया। वहां अब पुल बन गया है। वहां मुगल शासकों के

**दसाण मूंद रसणा डसी,
नीलाक मूक भरिया नयन,
तो मूत भाह प्रताप सी।।**

अर्थात् “तूने अपने घोड़े को (शाही) दाग नहीं लगने दिया। अपनी पगड़ी तूने कभी भी किसी के सामने नहीं झुकाई। तू अपने यश के गीत गवा गया। अपने राज्य के धुरे को तू अपने बाएं से चलाता रहा। तू न तो नवरोज में गया और न शाही डेरों में। तू शाही झरोखे के नीचे नहीं गया। तेरी श्रेष्ठता के कारण दुनिया ही दहलती रही। हे प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु पर शाह (अकबर) ने दांतों के बीच जीभ दबाई। निःस्वासें छोड़ीं और आंखों में आंसू भर

एक गोभक्षी बघेरे को तीर चलाकर मारते समय महाराणा प्रताप की आंतों में खिंचाव आ गया। इस वजह से वे अस्वस्थ हो गए। दो मास की अस्वस्थता के पश्चात उन्होंने देह त्याग गोलोकवास किया। उन्होंने गोमाता की रक्षार्थ अपने प्राण समर्पित किए।



वैभवपूर्ण स्मारक से इतर सफेद पत्थर की आठ खंभों वाली एक साधारण छतरी है, जो प्रताप के महान व्यक्तित्व का प्रतीक है। ‘महाराणा यश प्रकाश’ के अनुसार जब प्रताप की मृत्यु का समाचार (लाहौर में) अकबर के पास पहुंचा, तो वह स्तब्ध और उदास हो गया। उसका यह हाल देखकर दरबारी ताज्जुब में पड़ गए, वहां मौजूद प्रसिद्ध चारण कवि दुरसा आढ़ा ने सम्राट की भावना को ठीक तरह से समझा और उसी समय कहा—

**आ लैगो अणदाग,
पाघ लेगो अणनामी,
गौ आड़ा गवड़ाय,
जिको बहतो धुर कामी।
नवरोजे नह गयो,
न गौ आंतसा नवल्ली,
न गौ झरोखा हेठ,
जेठ दुनियाण दहल्ली।
गहलोत राण जीती गयो,**

गए। गहलोत राणा (प्रताप) तेरी ही विजय हुई। तू जीत गया।”

इस प्रकार महाराणा प्रताप ने अपने तपस्वी, वीरव्रती जीवन से केवल मेवाड़ ही नहीं, बल्कि व्यक्तित्व व कृतित्व से पूरे विश्व में हिन्दुत्व का डंका बजाया। इसलिए उनके लिए लिखा गया है -

**माई ऐहड़ा पूत जण,
जेहड़ा राणा प्रताप।
अकबर सूतो ओझके,
जाण सिरहाणे सांप।।**

भारतवर्ष की प्रत्येक नारी महाराणा प्रताप जैसे यशस्वी पुत्रों को जन्म देकर अपनी कोख सार्थक कर मां भारती को गौरवान्वित करे, और हम सभी महाराणा प्रताप के श्रेष्ठतम जीवन आदर्शों को उम्रने जीवन में आचरण कर जीवन की सार्थकता का अनुभव करें।

(वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप समिति, उदयपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक ‘प्रताप गाथा’ से साभार)

चेतक की वीरता



रण बीच चौकड़ी भर-भर कर
चेतक बन गया निराला था
राणाप्रताप के घोड़े से
पड़ गया हवा का पाला था

जो तनिक हवा से बाग हिली
लेकर सवार उड़ जाता था
राणा की पुतली फिरी नहीं
तब तक चेतक मुड़ जाता था

गिरता न कभी चेतक तन पर
राणाप्रताप का कोड़ा था
वह दौड़ रहा अरिमस्तक पर
वह आसमान का घोड़ा था

था यहीं रहा अब यहां नहीं
वह वहीं रहा था वहां नहीं
थी जगह न कोई जहां नहीं
किस अरिमस्तक पर कहां नहीं

निर्भीक गया वह ढालों में
सरपट दौड़ा करबालों में
फंस गया शत्रु की चालों में

बढ़ते नद-सा वह लहर गया
वह गया गया फिर ठहर गया
विकराल वज्रमय बादल-सा
अरि की सेना पर घहर गया।

भाला गिर गया गिरा निसंग
हय टापों से खन गया अंग
बैरी समाज रह गया दंग
घोड़े का ऐसा देख रंग

■ श्याम नारायण पाण्डेय



हल्दीघाटी युद्ध मुगलों के माथे पर लिखी थी इस हार की कहानी

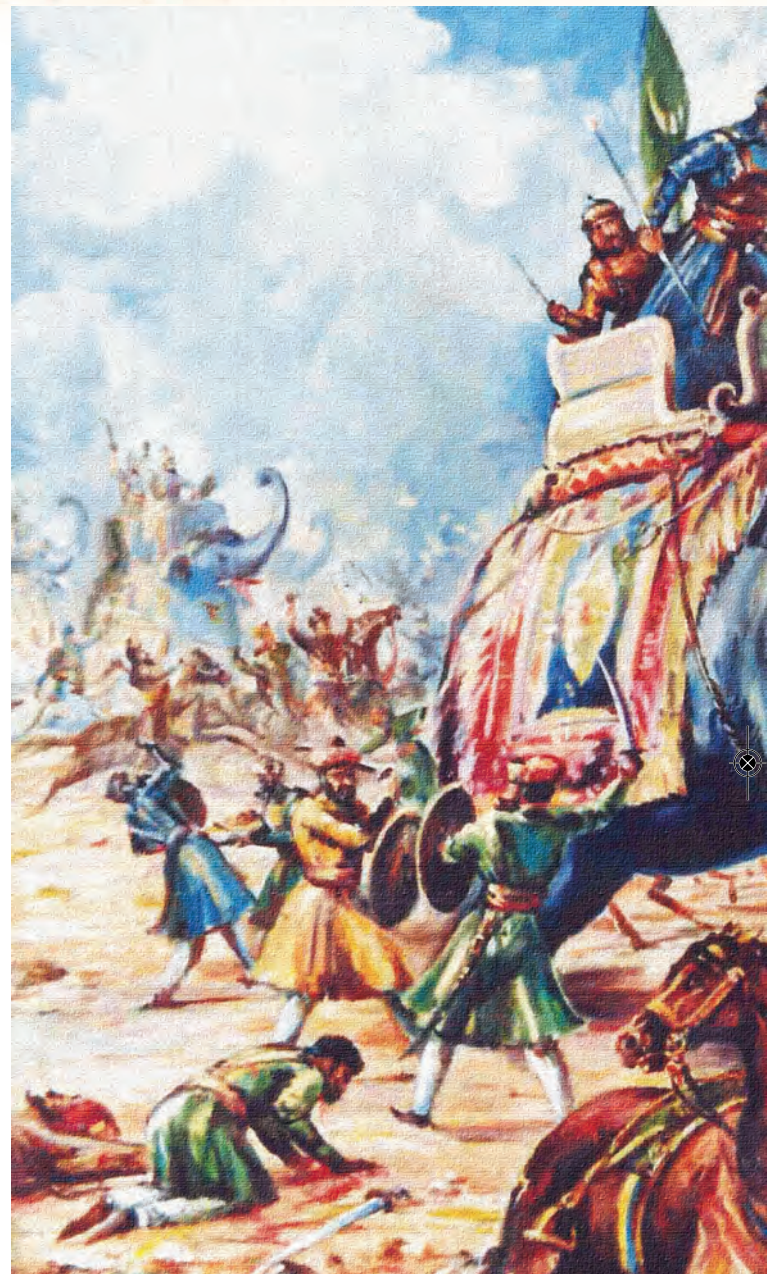
■ के.एस. गुप्ता

हल्दीघाटी युद्ध को लेकर तथाकथित इतिहासकारों ने भ्रम फैलाया कि मुगल सेना इसमें विजयी रही, जबकि तथ्य इससे उलट है। महाराणा प्रताप ने मुगल सेना के छक्के छुड़ा दिए थे

हल्दीघाटी

नाथद्वारा से करीब 16 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। गोगुन्दा और खमनोर की पहाड़ी श्रेणियों के मध्य यह इतनी संकरी घाटी थी कि दो आदमी भी इसमें साथ-साथ नहीं चल सकते थे। एक घोड़े को भी इसे पार करने में दिक्कत आती थी। यहां की मिट्टी के रंग के हल्दी जैसा पीला होने के कारण इस स्थान को हल्दीघाटी कहा गया है। यह स्थान 18 जून, 1576 को प्रताप और मुगलों के मध्य निर्णायक युद्ध के कारण प्रसिद्ध हुआ।

राजा उदयसिंह की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रताप 28 फरवरी, 1572 को मेवाड़ के महाराणा बने। उस समय मेवाड़ की राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न थी। उसके समस्त उपजाऊ भाग पर मुगलों का अधिकार था। प्रताप को मेवाड़ राज्य के कुल क्षेत्रफल का 3 प्रतिशत भाग ही विरासत में



मिला था। यह सम्पूर्ण क्षेत्र पहाड़ी इलाका था जहां कृषि उत्पादन आसान नहीं था। अकबर ने 1568 के तुरन्त पश्चात् मेवाड़ के अधीनस्थ हिस्से को अजमेर सूबे का भाग बना चित्तौड़ सरकार बना दी और वहां एक नया प्रशासकीय तंत्र स्थापित कर दिया। इस प्रकार राज्य के लिए परिस्थितियां एकदम प्रतिकूल थीं। साथ ही 16वीं शताब्दी में भारत में घटित तीन घटनाओं का भारतीय जनमानस पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। प्रथम 1527 में खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा की बाबर के हाथों पराजय, तालीकोटा



अचूक निशाना : चेतक पर सवार महाराणा
प्रताप मानसिंह पर वार करते हुए



द्वितीय युद्ध में विजयनगर साम्राज्य का पतन तथा 1568 में अकबर का चित्तौड़ पर अधिकार। उपर्युक्त तीनों युद्धों में पराजित पक्ष को अत्यधिक जन-धन की क्षति उठानी पड़ी। इससे भी परे सर्वाधिक प्रभाव भारतीय जनता के मनोबल पर पड़ा। जनता के सभी वर्गों में, चाहे शासक हो या सामन्त अथवा सामान्यजन, इन निरन्तर और निर्णायक पराजयों से यह बात घर करने लगी कि उनकी नियति पराधीनता ही है। स्वतंत्रता की कल्पना एक स्वप्नमात्र प्रतीत होने लगी। स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा करने

मुगल व प्रताप के राजपूत सैनिकों के पहनावे एक जैसे होने से उनमें भेद करना संभव नहीं हो रहा था। बदायूनी ने अपनी समस्या मीर बख्शी आसफ खां के समक्ष रखी कि मित्र व शत्रु को कैसे पहचाना जाए। इस पर आसफ खां ने उत्तर दिया कि "तीर चलाते जाओ, राजपूत किसी भी पक्ष का हो, उसके मारे जाने से इस्लाम को तो लाभ होगा ही।"



तथ्य यह है कि...

महाराणा प्रताप की सेना ने 18 जून, 1576 को प्रातः ही मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। इतिहास में इस युद्ध को हल्दीघाटी युद्ध के नाम से जाना जाता है। महाराणा प्रताप ने नीतिकारों के साथ मिलकर युद्ध लड़ने की जो नीति बनाई वह थी-मारो और भाग जाओ। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि मुगल सेना में मगदड़ मच गई और अग्रिम पंक्ति पूरी तरह पराजित हुई।

वाला अब कोई नहीं रहा। भारतीय समाज नेतृत्वहीन हो गया व जनता में उत्साह एवं उमंग का पूर्णतः अभाव हो गया। देश में संकटमय स्थिति व्याप्त थी। इससे उद्धार की संभावना दूर-दूर तक दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। आक्रान्ता विजेताओं ने देश की जनता को आतंकित करने में कोई कमी नहीं रखी। खानवा के युद्ध के पश्चात् युद्ध में मृत भारतीय सैनिकों के सिरों को एकत्रित कर पिरामिड सा बनाया गया और बाबर ने उसके सम्मुख गाजी की उपाधि धारण की। तालीकोटा युद्ध के पश्चात् बहमनी सेना ने विजयनगर को लूटा। उसे तहस-नहस कर दिया और वहां के अनगिनत नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया। यह मात्र विजयनगर की पराजय नहीं थी, अपितु इससे दक्षिण में भारतीय प्रभुत्व की संभावना सदैव के लिए समाप्त हो गई। इसी प्रकार चित्तौड़ धावे के पश्चात् अकबर चित्तौड़गढ़ में तीन दिन ठहरा। इन तीन दिनों में उसने दुर्ग में उपस्थित निर्दोष असैनिक जनता के कल्लेआम का आदेश दिया। माना जाता है कि 30,000 से अधिक स्त्री, पुरुष एवं बालकों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस क्रूरतापूर्ण एवं अमानुषिक कार्य का उद्देश्य शासकों तथा वहां की जनता को आतंकित करना था। अकबर इस अनीति, अन्यायपूर्ण तथा लोमहर्षक कृत्य को भूलना प्रताप के लिए संभव नहीं था। प्रताप को ज्ञात था कि अगर वह ऐसा करता है तो मेवाड़ ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय जनता के प्रति अन्याय होगा। इस प्रतिकूल परिस्थिति में समस्त जनमानस की निगाहें प्रताप की ओर टिकी हुई थीं।

वही आशा की एक किरण थी। उन्हें मात्र एक किरण ही नहीं अपितु प्रखर सूर्य के ताप से मुगल साम्राज्य को गलाना था। अतः प्रताप के सामने उद्देश्य स्पष्ट था। आवश्यकता थी- नीति निर्धारण व उद्देश्य प्राप्ति के अनुकूल मार्ग निश्चित करना।

उधर अकबर की मान्यता थी कि मेवाड़ में अव्यवस्था की स्थिति के बाद भी प्रताप से युद्ध करना आसान नहीं है। अतः उसने मेवाड़ को घेरने की नीति अपनाई। 1572 तक अकबर ने मेवाड़ की उत्तर-पूर्वी और पश्चिमी सीमा की घेराबन्दी कर दी। अकबर का गुजरात पर अधिकार होने से मेवाड़ की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर भी मुगल प्रभाव बढ़ गया। अकबर ने प्रताप के भाई जगमाल को जहाजपुर में स्थापित कर दिया तो पूर्वी भाग में स्थित मेवाड़ के हुरड़ा, शाहपुरा, बदनौर आदि को अजमेर की दरगाह को आर्थिक सहायता के रूप में प्रदान किया। वह इन सारी घटनाओं का प्रताप पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ने का अनुमान लगाने लगा। उसने सोचा कि इन समस्त घटनाओं से प्रताप का मनोबल गिरेगा और वह अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश होगा। उसे प्रताप से बिना युद्ध के अधीनता में लाने की संभावना प्रतीत हुई और उसने अपनी ओर से पहल कर समझौते के लिए एक-एक करके एक वर्ष की अवधि में चार शिष्टमंडल इस उद्देश्य से भेजे।

ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर ने प्रताप के चरित्र को समझने में भूल की। वह एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालना चाह रहा था, किन्तु प्रताप कुछ अलग ही मिट्टी के बने थे, जिसका अनुमान वह

नहीं लगा सका। समस्याओं से कतराना प्रताप के स्वभाव में नहीं था, वह तो उनका सामना करने के लिए तत्पर रहते थे। समस्याएं उन्हें चिंतित नहीं करती थीं अपितु दृढ़ता प्रदान करती थीं। शिष्टमंडलों की असफलता के उपरान्त भी प्रताप के विरुद्ध अकबर द्वारा तत्काल सैनिक अभियान न चलाना अकबर की चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसमें इच्छापूर्ति के लिए धैर्य रखने की प्रवृत्ति न थी। शायद इसका एक मात्र कारण यही था कि अकबर जानता था कि प्रताप के विरुद्ध सैनिक अभियान एक साधारण कदम नहीं होगा। असाधारण कार्य के लिए उसी के अनुरूप तैयारियों की आवश्यकता थी।

मेवाड़ की ओर मुगल सेना

वास्तव में प्रताप की दृढ़ता, साहस, शौर्य और उद्देश्य के प्रति निष्ठा को अकबर समझने में एकदम असफल रहा। प्रताप का मुख्य उद्देश्य किसी भी मूल्य पर स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा करना था तथा साथ ही विश्व के सर्वशक्तिमान शासक से अपनी सार्वभौमिक स्थिति को बनाए रखना था। वह इसे अपना एक ऐतिहासिक दायित्व मानते थे। गत अनेक शताब्दियों से विदेशी आक्रान्ताओं से देश को बचाने में मेवाड़ का महत्वपूर्ण योगदान रहा था। वह इसको कभी भुला नहीं सकते थे और अकबर की अधीनता स्वीकार कर अपने पूर्वजों की गरिमा को कलंकित नहीं कर सकते थे। इसलिए राणा ने राज्य की रक्षा के लिए तैयारियां प्रारम्भ कर दीं और जनता को पहाड़ी क्षेत्रों में जाने की आज्ञा दे दी। साथ ही मैदानी क्षेत्र नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया ताकि मुगल सैनिकों को किसी भी प्रकार की खाद्य सामग्री तथा उनके जानवरों को घास प्राप्त न हो सके। उन्होंने सभी प्रमुख सामरिक स्थानों की किलाबंदी की।

उधर अकबर जब प्रताप के विरुद्ध की कार्रवाई से सन्तुष्ट हो गया और भारत के



अन्य क्षेत्रों से बेफिक्र हो गया तब उसका ध्यान मेवाड़ की ओर गया। वह इसी उद्देश्य से 18 मार्च, 1576 को फतेहपुर सीकरी से अजमेर के लिए रवाना हुआ और अजमेर पहुंच विभिन्न स्तरों पर विचार विमर्श करते हुए मुगल अभियान के नेतृत्व का उत्तरदायित्व मानसिंह को सौंपने की घोषणा की। एक गैर मुस्लिम को मुस्लिम सेना का नेतृत्व सौंपना आश्चर्यजनक था। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस घोषणा को लेकर मुगल दरबारियों में विरोध था। अबुल फजल के अनुसार तो मानसिंह की योग्यता तथा अकबर से व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण यह उत्तरदायित्व उसे दिया गया था। लेकिन अनेक अन्य फारसी इतिहासकार इसे स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार, मानसिंह को मेवाड़ के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व देने के पीछे दो प्रमुख कारण थे। एक तो प्रताप को अपना सुरक्षित स्थान छोड़ युद्ध के लिए मैदानी क्षेत्र में लाना क्योंकि मुगल सेनाओं को मैदानी युद्ध क्षेत्र में अपनी सफलता की संभावना दिखती थी। किन्तु प्रताप ने युद्ध के लिए उपयुक्त स्थान को छोड़ना उचित न मान मुगल सेना को मेवाड़ के आन्तरिक भाग में आने को बाध्य किया। इस प्रकार मानसिंह को भेजने की निरर्थकता सिद्ध हो गई।

मानसिंह को नेतृत्व सौंपने का दूसरा कारण यह बताया जाता है— मेवाड़ के विरुद्ध लड़ने की राजपूतों की इच्छा को समाप्त करना। किन्तु इसमें भी सफलता नहीं मिली। कच्छवाहों के अतिरिक्त अन्य राजपूत वंश प्रताप के विरुद्ध लड़ने को लेकर उदासीन ही रहे। मानसिंह दो मास तक माण्डलगढ़ में ठहरा रहा। यहां विभिन्न स्थानों से मुगल सेनाएं आकर मिलीं और फिर बनास नदी के किनारे-किनारे मोलेला गांव में आकर मानसिंह ने अपना शिविर स्थापित किया। यहां से उसका उद्देश्य कुछ दिनों विश्राम कर स्थिति का जायजा लेते हुए गोगुन्दा पहुंचने का था।

उधर प्रताप अपने गुप्तचरों के माध्यम से मुगल गतिविधियों से बराबर परिचित हो रहे थे। प्रताप ने कुम्भलगढ़ से गोगुन्दा होते हुए लोसिंग पहुंचकर अपना पड़ाव डाला। इसके पूर्व गोगुन्दा में रणनीति तय करने के लिए युद्ध परिषद् आमंत्रित की गई। मुगल सेना के विरुद्ध किस सामरिक नीति का अनुसरण किया जाए? यहां भी दो स्पष्ट मत थे। नवयुवक वर्ग चाहता था कि मानसिंह से आमने-सामने का युद्ध किया जाए तो दूसरा पक्ष मारो और भागो की नीति जिसे आधुनिक युद्ध रणनीतिकार 'गुरिल्ला' नीति कहते हैं? का पक्षधर था। मुगलों की सैनिक संख्या और उनकी क्षमताओं को देखते हुए अनुभवी व्यक्तियों ने दूसरे पक्ष का समर्थन किया।

इस प्रकार दो स्पष्ट विचारधाराओं के बीच जिस प्रकार प्रताप ने युद्ध नीति का समन्वय किया, वह अत्यधिक आश्चर्यजनक है। प्रताप लोसिंग से रवाना हो हल्दीघाटी के क्षेत्र में पहुंचे और 18 जून, 1576 को प्रातः ही मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध को हल्दीघाटी युद्ध की संज्ञा दी जाती है।

मुगल सेना में भगदड़

बदायूनी के अनुसार पहाड़ के पश्चिम की ओर से निकल कर मुगलों की अग्रिम पंक्ति पर मेवाड़ सेना ने आक्रमण किया। यह आक्रमण इतना जोरदार था कि अग्रिम पंक्ति पूर्णरूप से पराजित हुई। हरावल में नियुक्त सैयद हाशिम के नेतृत्व वाली सेना पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गई। लूणकरण के नेतृत्व वाली सेना, जो

वामपार्श्व में थी, भेड़ों के झुण्ड के समान भाग खड़ी हुई। वह अपनी जीवन रक्षा के लिए दक्षिणी पार्श्व की तरफ दौड़ी। सेना में अफरा-तफरी मच गई। मुगल व प्रताप के राजपूत सैनिकों के पहनावे के एक जैसा होने से उनमें भेद करना संभव नहीं हो रहा था। बदायूनी ने अपनी समस्या मीर बख्शी आसफ खां के समक्ष रखी कि मित्र व शत्रु को कैसे पहचाना जाए। इस पर आसफ खां ने उत्तर दिया कि “तीर चलाते जाओ, राजपूत किसी भी पक्ष का हो, उसके मारे जाने से इस्लाम को तो लाभ होगा ही।” उधर मेवाड़ सेना के दूसरे भाग, जो स्वयं राणा के नेतृत्व में था, ने घाटी से निकलकर गाजी खां की सेना पर आक्रमण किया और सेना को तहस-नहस करते हुए मध्य भाग तक पहुंच गए। इस आक्रमण की तीव्रता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि सीकरी के शेखजादे भाग निकले। गाजी मुल्ला ने थोड़ा प्रतिरोध जताया, परन्तु चोट लगने पर वह अपने साथियों के साथ यह कहते हुए भाग गया कि यह परम्परा तो पैगम्बर के समय से ही है। मेवाड़ी सेना के आक्रमण का वेग इतना तीव्र था कि मुगल सैनिक बनास के दूसरे किनारे से 10-15 किमी. तक भागकर अपनी जान बचा पाए। इस प्रकार मुख्य युद्ध खमनोर के पास में हुआ। युद्ध में इतना रक्तपात हुआ कि सारा क्षेत्र रक्तमय हो गया। तभी इस स्थल को रक्त तलाई के नाम से जाना जाता है।

युद्ध की तीव्रता का वर्णन करते हुए अबुल फजल ने लिखा है कि वहां जान

प्रताप ने मुगलों के रसद मार्ग को काट दिया। सैनिक खाद्य सामग्री के अभाव में अपने जानवरों को मारकर उदरपूर्ति कर रहे थे। इसका असर सैनिकों के स्वास्थ्य पर पड़ने लगा। उन का मनोबल टूटने लगा। राणा प्रताप की इस रणनीति का मुगल सेना पर जबरदस्त असर पड़ा।





सस्ती और इज्जत महंगी हो गयी थी। बदायूनी ने माना कि रामशाह तंवर ने ऐसी वीरता का प्रदर्शन किया कि जिसका वर्णन करना उसकी लेखन क्षमता से बाहर है। मानसिंह के हरावल के राजपूत, जो बाएं भाग में थे, तथा आसफ खां भी जान बचाने की खातिर भाग निकला। बदायूनी ने स्वीकार किया कि अगर सैयद थोड़े टिके नहीं होते तो मुगलों को पराजय का सामना करना पड़ता। युद्ध में प्रताप और मानसिंह का भी आमना-सामना हुआ और मानसिंह प्रताप के भाले के वार से हाथी के हौदे में छिप जाने की वजह से बच सका। हालांकि उसके हाथी का महावत मारा गया। भागते हाथी को वश में करने के लिए मानसिंह महावत की जगह बैठ गया। हाथी के युद्ध क्षेत्र से भाग जाने से ही मानसिंह सुरक्षित बच पाया।

इस संघर्ष में प्रताप के घोड़े चेतक को भी पैर में चोट आई। प्रताप को मुगल सेना ने घेर लिया। लेकिन प्रताप ने संतुलन बनाए रखा तथा अपनी शक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन किया। मुगल सेना के बलिष्ठ पठान बहलोल खां ने अपनी पूरी ताकत से प्रताप पर वार किया। प्रताप ने सतर्कता से उस वार को बेकार ही नहीं किया अपितु पलटकर ऐसा वार किया कि बहलोल खां को जिरहबख्तर व घोड़े सहित दो फांक में चीर डाला। प्रताप के हाथियों ने भी मेवाड़ी सेना के अनुरूप कमाल का प्रदर्शन किया जैसा कि अबुल फजल ने माना है कि सैनिक जिस वीरता से लड़े, उसी वीरता का प्रदर्शन हाथियों ने भी किया।

अब मुगल पुनः व्यवस्थित होकर युद्ध करने की तैयारी कर रहे थे, तब प्रताप ने युद्ध को मैदान की बजाय पहाड़ की ओर मोड़ने का प्रयास किया। उनकी सेना के दोनों भाग एकत्रित हो पहाड़ों की ओर मुड़े और अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचे। उस वक्त तक मुगल सेनाओं को रोके रखने के लिए झाला मान के नेतृत्व में कुछ सैनिकों ने मोर्चा संभाला। झाला मान ने

अपना जीवन का उत्सर्ग करके भी अपना उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। उधर मुगल सेना ने डर के कारण प्रताप की सेना का पीछा नहीं किया। बदायूनी ने इसके तीन प्रमुख कारण बताए हैं। एक तो प्रचण्ड गर्मी। उसने लिखा कि उस समय ऐसी गर्मी थी कि दिमाग पिघल जाए।

दूसरा कारण मुगल सेनाएं इतनी थक चुकी थी कि उनमें अब लड़ने का साहस व सामर्थ्य नहीं बचा था। तीसरा मुख्य कारण था कि उन्हें इस बात का डर था कि प्रताप की सेना घात लगाए बैठी होगी और पीछा करते हुए अचानक आक्रमण हुआ तो कोई जीवित नहीं बच सकेगा। अतः प्रताप का पीछा करने की बजाय अपने शिविर में लौट जाना ही उन्हें श्रेयस्कर लगा। इस प्रकार हल्दीघाटी का युद्ध दोपहर तक ही समाप्त हो गया। इस बीच राणा पूजा के नेतृत्व में भीलों ने मुगलों के शिविर पर आक्रमण कर दिया था। सारी खाद्य सामग्री लूट ली। मुगल शिविर की स्थिति इतनी खराब हो गई कि सैनिकों को खाने के लाले पड़ने लगे। घायल सैनिकों की सेवा सुश्रुषा तथा युद्ध की समीक्षा करने के बजाय उनके लिए जीवित सैनिकों के खाने की चिंता करना आवश्यक हो गया। प्रताप की सेना के भय के कारण शिविर में रात बिताना भी उनके लिए भारी हो गया और इसलिए वे दूसरे दिन प्रातःकाल गोगुन्दा के लिए रवाना हो गये। वहां भी सैनिकों को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। मेवाड़ की सेना के अचानक आक्रमण को रोकने के लिए जगह-जगह आड़ खड़ी की गई। शिविर के पास दीवारें इतनी ऊंची बनाई गईं ताकि घुड़सवार उनको फांद न सके। उनको एक तरह से कैदी जैसा जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रताप ने उनके रसद मार्ग को भी काट दिया। सैनिक खाद्य सामग्री के अभाव में अपने जानवरों को मारकर उदरपूर्ति कर रहे थे। इसका असर सैनिकों के स्वास्थ्य पर पड़ने लगा। गोगुन्दा को खाली करने

के अतिरिक्त मुगलों के पास अन्य कोई विकल्प नहीं रहा। जैसे ही मुगलों की सेना गोगुन्दा से हटी, महाराणा ने पुनः गोगुन्दा को अधीन कर लिया। इस प्रकार युद्ध का पटाक्षेप हुआ।

इतिहासकारों में हल्दीघाटी युद्ध के परिणाम को लेकर मतभेद दृष्टिगोचर होता है। समकालीन राजस्थानी इतिहासकारों का विश्लेषण समकालीन फारसी इतिहासकारों का आलोचनात्मक अध्ययन एवं समकालीन परिस्थितियों का विवेचन स्पष्ट रूप से मुगलों की करारी हार और प्रताप की सफलता की ओर इंगित करते हैं। इसके अलावा खेड़ा शिलालेख (1585) (वि. सं. 1642 ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी) से स्पष्ट है कि प्रताप ने मानसिंह पर विजय पाने के उपलक्ष्य में रणछोड़ के मन्दिर के पुजारी को चार हल भूमि भी प्रदान की थी। इसी प्रकार जगदीश मन्दिर प्रशस्ति के श्लोक सं. 40 में मुगलों की हार का उल्लेख है। प्रतापकालीन सनद पट्टे व ताम्रपत्र भी प्राप्त हुए हैं, जिसमें से अधिकांश हल्दीघाटी युद्ध के कुछ मास के पश्चात् ही प्रदान किये गये थे। इनसे महाराणा का प्रभाव क्षेत्र सिद्ध होता है। मृगेश्वर ताम्रपत्र में प्रताप का क्षेत्र व प्रसार तो वर्तमान पाली जिले में होना निश्चित होता है। यह ताम्र पत्र कान्हा सांदू को दिया गया था जिसमें हल्दीघाटी युद्ध में वीरता का प्रदर्शन किया गया था। इसी प्रकार संथाणा, मोही, पीपली ओडा, लाखोला के ताम्र पत्रों से स्पष्ट होता है कि युद्ध के पश्चात् ऐसे क्षेत्रों को प्रताप ने अपने राज्य में मिला लिया था जिन पर युद्ध के पूर्व मुगलों का कब्जा था। इसी प्रकार राजरत्नाकर, राणा रासो राजप्रशस्ति महाकाव्य आदि मेवाड़ से सम्बन्धित विभिन्न रचनाओं में प्रताप की ही विजय दर्ज है।

इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं कि इस प्रकार के साधनों में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की संभावना रहती है, परन्तु यह हार को विजय में परिणत कर देने जैसी नहीं होती।



खानवा की हार को किसी ने न तो सांगा की जीत कहा और न ही अनिर्णायक युद्ध माना। इसी प्रकार 1568 में अकबर के चित्तौड़ अधिकार को किसी भी राजस्थानी इतिहासकार ने झुठलाया नहीं है। अतः यह दोष उपर्युक्त ग्रन्थों व प्रशस्तियों के निर्माता अथवा उत्कीर्णकर्ताओं पर भी नहीं लगाया जा सकता। हल्दीघाटी के युद्ध में प्रताप ने भारतीय नीति शास्त्रों में वर्णित युद्ध के अनुरूप अपनी रणनीति तैयार की थी। नीति कुछ इस प्रकार थी। अचानक तेज गति से आक्रमण तथा शत्रु को धोखे में रखना। गति को युद्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

मान्यताओं के अनुसार शत्रु पर तीव्र गति के साथ अचानक आक्रमण होना चाहिए। जब तक वह संभले और प्रतिकार प्रारंभ करे, तब तक शत्रु पक्ष को अत्यधिक हानि का सामना करना पड़े। नीतिकारों का यह भी मानना है कि आक्रमण के समय व स्थान के बारे में शत्रु को बेखबर रखा जाए तथा आक्रमण ऐसे स्थान पर किया जाए जहां शत्रु को इसकी बहुत कम आशा प्रतीत होती है। हल्दीघाटी के युद्ध में प्रताप की रणनीति कुछ ऐसी ही रही।

प्रताप के गोगुन्दा से लोसिंग पहुंचने की खबर से मानसिंह अनभिज्ञ था। वह तो प्रताप की गतिविधियों से भी बेखबर था। मेवाड़ी सेना का पहला आक्रमण मुगलों के लिए अप्रत्याशित था। वह इतना तेज था कि मुगलों का हरावल एकदम छिन्न-भिन्न हो गया। जैसे ही प्रथम आक्रमण के बाद मुगल सेना व्यवस्थित हुई तो प्रताप ने युद्ध को खुले मैदान से हटाकर पहाड़ी क्षेत्र में मोड़ना चाहा। अगर मानसिंह प्रताप के नये चुने स्थान पर लड़ने का प्रयास करता तो संपूर्ण मुगल सेना की जान को खतरे में डाल देता। परिस्थितियों को देखें तो प्रताप की विजय हुई। अगर ऐसा नहीं होता तो भावी मुगल संघर्ष में उनके अनुयायी ही उनका नेतृत्व स्वीकार नहीं

करते। इस युद्ध के करीब 50 वर्ष पूर्व खानवा युद्ध की हार के पश्चात् सांगा बाबर से लड़ने के लिए चन्देरी की ओर रवाना हुए। परन्तु उनके सामन्तों ने उनके नेतृत्व में लड़ने के बजाय सांगा को ही विष देकर मार डाला। युद्ध में हार से नेतृत्व का मनोबल भी कम हो जाता है तथा उसके अधीन लड़ने में सैनिक भी हतोत्साहित हो जाते हैं। हल्दीघाटी युद्ध के लगभग 40 वर्ष बाद प्रताप के उत्तराधिकारी अमरसिंह ने लम्बे संघर्ष के बाद 1615 में मुगलों से संधि कर ली। यह संधि मेवाड़ के लिए अपेक्षाकृत सम्मानजनक थी फिर भी समझौता कर

मजाक उड़ाते।

स्वयं अकबर को भी मानसिंह द्वारा भेजी गई सूचनाओं पर विश्वास नहीं हुआ। उसने महमूद खां को वास्तविक स्थिति का पता लगाने को भेजा। युद्ध के पश्चात् मानसिंह व आसफ खां को किसी भी प्रकार का पारितोषिक मिलने की बजाय उनकी दरबार में उपस्थिति पर पाबन्दी लगा दी गई, क्योंकि मान सिंह युद्ध भूमि से जान बचाकर भाग निकला था। बाद में मानसिंह मुगल सेना के साथ मेवाड़ गया किन्तु उसे सेनानायक बनाकर नहीं भेजा गया। 1568 में चित्तौड़ विजय पर अकबर ने फतहनामा

युद्ध में स्वयं मौजूद बदायूनी ने मेवाड़ी सेना के प्रथम आक्रमण की तीव्रता का विवरण दिया। बदायूनी ने स्वीकार किया कि जब वह मुगल दरबार में जा रहा था तो रास्ते में जहां कहीं भी मुगलों की जीत के बारे में बताता, वहीं लोग उसका मजाक उड़ाते।



लेने से उसकी स्थिति मेवाड़ में सम्मानजनक नहीं रही। प्रताप का तो शासक बनने के बाद पहला ही युद्ध था इसमें हार जाने पर किसी भी स्थिति में उनका नेतृत्व स्वीकार नहीं होता।

फारसी इतिहासकारों के लेखन और कथनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो भी स्पष्ट हो जाएगा कि इस युद्ध में प्रताप का पलड़ा भारी रहा। अबुल फजल ने माना है कि ऊपरी रूप से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी हार हुई है, लेकिन वास्तविक रूप से हम जीते।

अतः फजल का कथन मुगलों की करारी हार को छिपाना मात्र था। बदायूनी, जो स्वयं युद्ध में मौजूद था, ने मेवाड़ी सेना के प्रथम आक्रमण की तीव्रता का तो विवरण दिया है। बदायूनी स्वीकार करता है कि जब वह मुगल दरबार में जा रहा था तो रास्ते में जहां कहीं भी मुगलों की जीत के बारे में कहता, लोग उसका

जारी किया था किन्तु हल्दी घाटी युद्ध के पश्चात् ऐसा कुछ नहीं किया गया। इन सबसे स्पष्ट है कि प्रताप को शानदार सफलता मिली। उनकी यशोगाथा दूर-दूर तक फैली और मित्रों की संख्या में भी वृद्धि होने लगी। भले ही हल्दी घाटी का युद्ध कुछ घंटे का था, इसमें मरने वालों की संख्या 500 के करीब थी। लेकिन युद्ध का महत्व दूसरी अवधि अथवा उसमें मारे गए हुए मृतकों की संख्या से नहीं अपितु परिणाम व प्रभाव से निर्मित होता है। इस युद्ध का महत्व इसी में है कि मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात पहली बार मुगल सेना को राजस्थान में हार का सामना करना पड़ा तथा उसके अजेय होने का भ्रम टूट गया।

(लेखक मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में प्रोफेसर व इतिहास विभाग के अध्यक्ष रहे हैं)



महान प्रताप हैं, अकबर नहीं

पाश्चात्य व वामपंथी 'बुद्धि के हिमालयों' ने एक साजिश के तहत अपनी लेखनी के माध्यम से भारत में यह भ्रम फैलाया कि अकबर महान था। यह पूरी तरह से झूठ है। महाराणा प्रताप अद्वितीय योद्धा, महान त्यागी, सफल कूटनीतिक, कुशल प्रशासक थे, जबकि अकबर इस्लामिक आक्रांता के सिवाय कुछ न था

■ डॉ. देव कोठारी

परमप्रतापी

प्रताप के जीवन-वृत्त को लेकर इतिहासविदों ने बहुत कुछ लिखा है। उन्हें अद्वितीय योद्धा, अप्रतिम स्वतंत्रता सेनानी, महान त्यागी, बलिदानी, सफल कूटनीतिज्ञ और कुशल प्रशासक बताते हुए उनकी प्रशंसा की है, लेकिन जब इन्हीं लेखकों ने अकबर के साथ प्रताप की तुलना की है तो प्रताप को

'संकीर्ण एवं छोटे उद्देश्य के लिये' संघर्ष करने वाला तथा अकबर के तथाकथित राष्ट्रीय एकता के कार्य में असहयोग करने वाला अदूरदर्शी योद्धा बताते हुए अकबर को महान कहा है। इतिहासविदों का यह विरोधाभास उनके पक्षपातपूर्ण आचरण को रेखांकित करता है, साथ ही इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वे केवल फारसी स्रोतों से ही प्रभावित हैं। उन्होंने संस्कृत एवं राजस्थानी स्रोतों के अवलोकन का आंशिक

प्रयास तक नहीं किया है, यदि वे ऐसा करते तो इन इतिहासविदों का रवैया इतना विरोधाभासी और पक्षपातपूर्ण नहीं होता। वस्तुस्थिति यह है कि पाश्चात्य इतिहासविद् विन्सेंट स्मिथ ने केवल फारसी ग्रंथों को आधार बनाकर अपनी 'अकबर: द ग्रेट मुगल' शीर्षक पुस्तक में अकबर को महान सिद्ध किया है। लगभग इसी पुस्तक से प्रभावित होकर डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने भी 'अकबर द ग्रेट' शीर्षक



पुस्तक के आधार पर अकबर को ही महान बताया है। इन दोनों पुस्तकों की सामग्री को अन्तिम सत्य मान कर पाश्चात्य व वामपंथी इतिहासविदों ने भी अकबर को महान बताने में ही अपनी लेखनी का उपयोग किया है। इतिहास सत्य का आईना होता है। तथ्य कुछ और भी हो सकते हैं। फारसी स्रोतों के अलावा संस्कृत व राजस्थानी में उपलब्ध विपुल सामग्री की ओर इन इतिहासकारों ने दृष्टिपात ही नहीं किया है। जब तक उपर्युक्त फारसी एवं विपुल परिमाण में उपलब्ध संस्कृत व राजस्थानी भाषा से सम्बन्धित स्रोतों का तटस्थ एवं तुलनात्मक मूल्यांकन कर निष्कर्ष नहीं निकाला जायेगा, तब तक अकबर या प्रताप किसी को महान बताना न्यायसंगत नहीं होगा। इस आलेख में इन दोनों स्रोतों के तटस्थ भाव से मूल्यांकन करने पर जो निष्कर्ष निकलता है, उससे स्पष्ट है कि केवल और केवल महाराणा प्रताप ही महान हैं, अकबर नहीं। प्रताप महान क्यों हैं? सार रूप में निष्कर्ष इस प्रकार है - महाराणा उदयसिंह (1537-72) की मृत्यु के बाद 28 फरवरी, 1572 को प्रतापसिंह जब मेवाड़ की गद्दी पर आरूढ़ हुए, उस समय राज्य की स्थिति अच्छी नहीं थी। उन्हें विरासत में जो मेवाड़ मिला, वह केवल 450 वर्ग कि.मी. भूभाग की परिधि में ही बसा हुआ पहाड़ी भाग था।

मेवाड़ की परंपरागत राजधानी चित्तौड़गढ़ तथा मेवाड़ का मैदानी भूभाग अकबर के कब्जे में चला गया था। अकबर के साथ 1568 में हुए युद्ध में मेवाड़ के अधिकांश वरिष्ठ सामंतों और अनुभवी योद्धा खेत रहे थे। उनके पास कुछ ही अनुभवी योद्धा बचे थे। व्यवस्थित सैन्य संगठन भी नहीं था। राजधानी के रूप में चित्तौड़गढ़ के छूट जाने के फलस्वरूप राजकोष भी खाली था। आय के साधन कम हो गये थे। प्रताप के पास मेवाड़ का पहाड़ी भूभाग होने के कारण प्रशासनिक व्यवस्था भी अनुकूल नहीं थी। ऐसी स्थिति में प्रताप के समक्ष मेवाड़ को पुनः अपने पैरों पर खड़ा करने की बड़ी चुनौती थी। सामने शक्तिशाली मुगल बादशाह



जंगल में अपने सैनिकों के साथ महाराणा प्रताप

अकबर की मेवाड़ को अपने साम्राज्य में मिलाने की तीव्र महत्वाकांक्षा थी। इस प्रकार की ज्वलंत कठिनाइयों का सामना करना किसी साधारण व्यक्ति के बलबूते की बात नहीं थी। प्रताप की जगह कोई कमजोर शासक होता तो वह अकबर की दासता स्वीकार कर लेता, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

प्रताप ने 19 जनवरी, 1597 को जब अंतिम सांस ली, तब तक उन्होंने मेवाड़ को पुनः पुराने वैभव पर पहुंचा दिया था, ऐसा उनके महान व्यक्तित्व के कारण ही संभव हो सका। उनके इस महान व्यक्तित्व के मूल में उनका दृढ़ नैतिक चरित्र था। इस नैतिक चरित्र की आत्मा प्रताप के उच्च राष्ट्रीय आदर्श, दृढ़ मनोबल, असीम धैर्य और अटल निश्चय से परिपूर्ण थी। उनके इसी चरित्र ने उनके सहयोगियों को निरंतर प्रेरित, उत्साहित और संघर्ष काल में उन्हें सदा आशावादी तथा जुझारू बनाये रखा। प्रताप का जीवन सादगीपूर्ण था। जंगल प्रताप के

लिये किसी महल से कम न था। पत्तल-दोनों में भोजन करना स्वर्ण पात्रों से ज्यादा संतुष्टिदायक था। अपनी प्रजा के हितों को सर्वोपरि रखना प्रताप की सामान्य प्रवृत्ति थी, फलस्वरूप उनकी ये सब बातें उनके सहयोगियों के लिये आदर्श बन गईं। प्रताप की इन्हीं चारित्रिक विशेषताओं के कारण अकबर की तुलना में उन्हें महान कहना प्राकृतिक न्याय की दृष्टि से स्वाभाविक भी है। प्रताप ने जाति, पंथ, सम्प्रदाय आदि संकीर्ण धारणाओं से ऊपर उठकर सदा राजधर्म का पालन किया। यही कारण था कि क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, मुसलमान, वनवासी भील आदि सभी जातियों में एकजुटता व मेलजोल का वातावरण बना रहा। अकबर के विरुद्ध संघर्ष में इन सबकी सक्रिय भागीदारी रही। हल्दीघाटी युद्ध में तो इन जातियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व जन सहयोग की दृष्टि से महाराणा प्रताप की यह उपलब्धि

प्रताप ने जाति, पंथ, सम्प्रदाय आदि संकीर्ण धारणाओं से ऊपर उठकर सदा राजधर्म का पालन किया। यही कारण था कि क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, मुसलमान, वनवासी भील आदि सभी जातियों में एकजुटता व मेलजोल का वातावरण बना रहा।



तथ्य यह है कि...

राणा प्रताप स्त्रियों को हमेशा सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जब कुंवर अमरसिंह, अब्दुरहीम खानखाना की बेगमों को कैद कर लाया तो प्रताप ने अमरसिंह को डांट कर महिलाओं को वापस ससम्मान लौटाने का आदेश दिया। इसके विपरीत अकबर का मीना बाजार में जाना, दरबारी रत्न पृथ्वीराज राठौड़ की पत्नी करुणावती को सबक सिखाना एवं उसके हरम में 6000 बेगमों का होना अकबर के चरित्र को उजागर करता है।

निरसंदेह एक प्रेरणास्पद व अनूठी घटना है। उस समय अन्य राजा-महाराजा अपने सुख, वैभव एवं ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये अकबर की दासता स्वीकार कर रहे थे, इस स्थिति को प्रताप के समकालीन कवि जाड़ा मेहड़ू ने उनकी प्रशंसा में अपनी वाणी को इस प्रकार मुखरित किया -

हाथी बंध घणां-घणां हेमर बंध, कसू हजारी गरब करो।

पातल रांण हंसै त्यां पुरसां, भाड़ै महलां पेट भरो॥

राणा प्रताप स्त्रियों को हमेशा सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जब कुंवर अमरसिंह अब्दुरहीम खानखाना की बेगमों को कैद कर लाए तो प्रताप ने उन्हें डांट

कर महिलाओं को वापस ससम्मान लौटाने का आदेश दिया। इसके विपरीत अकबर का मीना बाजार में जाना, उसके दरबारी रत्न पृथ्वीराज राठौड़ की पत्नी करुणावती का अकबर को सबक सिखाना एवं अकबर के हरम में 6,000 बेगमों का होना उसके चरित्र को स्वयं उजागर करता है। धार्मिक मान्यता की दृष्टि से प्रताप शैवमतवलम्बी थे। वैसे मेवाड़ के असली शासक एकलिंग (शिव) हैं। मेवाड़ के महाराणा दीवान के तौर पर उस पर शासन करते थे, लेकिन प्रताप ने धार्मिक सहिष्णुता व समभाव की नीति अपनाई। जैन मत के तत्कालीन प्रभावी आचार्य हीरविजयसूरि को पत्र लिख कर मेवाड़



कुंवर अमर सिंह को अब्दुरहीम खानखाना की बेगमों को छोड़ने का आदेश देते महाराणा प्रताप

की जनता को संबोधित करने के लिये आमंत्रित किया। पठान हकीम खां सूर को प्रताप ने हल्दीघाटी युद्ध में हरावल का नेतृत्व सौंपकर उस पर असीम विश्वास किया। एक ओर प्रताप ने धार्मिक दृष्टि से उदार व भेदभाव विहीन नीति का अनुसरण किया तो दूसरी ओर अकबर ने दीन-ए-इलाही नामक नवीन मजहब की नींव डाली और उसका पैगम्बर बन बैठा, लेकिन उसे जनसमर्थन नहीं मिला। अकबर स्वयं कट्टर सुन्नी मुसलमान था। एक समय ऐसा आया जब वह 'इमामे-आदिल' का पद ग्रहण कर एवं खुतबा पढ़कर राज्य सत्ता के साथ-साथ मजहबी विषयों का बड़ा अधिकारी भी बन बैठा। इससे सभी उलेमा क्षुब्ध हो गये, लेकिन अकबर विचलित नहीं हुआ। अकबर की तथाकथित मजहबी सहिष्णुता की नीति के बावजूद मुगलाधीन प्रदेशों में मजहबी कट्टरता और अत्याचार की घटनाएं होती रहीं। हल्दीघाटी युद्ध की एक घटना बताती है कि अकबर की मजहबी सहिष्णुता कैसी थी? 'मुन्तखुब-उत-तवारीख' का कर्ता अलबदायूनी अपने ग्रंथ में लिखता है कि हल्दीघाटी युद्ध में प्रताप के राजपूत सैनिक और मानसिंह के राजपूत सैनिक पहनावे की दृष्टि से एक जैसे लग रहे थे, तब उसने आसिफ खां से पूछा कि प्रताप के सैनिक कौन से हैं और मानसिंह के सैनिक कौन से हैं? मैं किन राजपूत सैनिकों पर कैसे वार करूं? इस पर आसिफ खां ने कहा कि तुम वार किए जाओ, जो भी मरेगा, काफिर ही मरेगा। तो ऐसी थी अकबर की 'मजहबी सहिष्णुता'। अकबर की तुलना में प्रताप चतुर कूटनीतिज्ञ थे। उनकी कूटनीति को अकबर समझ ही नहीं सका। उसने हल्दीघाटी युद्ध से पूर्व प्रताप को अपनी अधीनता स्वीकार कराने की दृष्टि से अलग-अलग समय पर चार शिष्टमण्डल भेजे लेकिन प्रताप बड़ी चतुराई के साथ लगभग तीन वर्ष तक इन शिष्टमण्डलों के साथ सुलहवार्ता चला कर युद्ध को टालते



रहे और इस अवधि में राजस्थान की मुगल विरोधी राजपूत व पठान शक्तियों के बीच तालमेल कायम करने तथा उनके द्वारा अलग-अलग स्थानों पर लड़ाई के मोर्चे खोलने में प्रताप सफल रहे। परिणामस्वरूप मेवाड़ को घेरने तथा प्रताप को अकेला करने में अकबर को बहुत परेशानी हुई।

प्रताप जब मेवाड़ की गद्दी पर बैठे, उस समय सैन्य व्यवस्था की दृष्टि से राज्य बहुत कमजोर स्थिति में था। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, लेकिन प्रताप ने अपनी प्रतिभा व योग्यता के बल पर सैन्य संगठन, सैन्य संचालन और व्यूह रचना कर इस तरह की विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त कर ली, जिसके फलस्वरूप वह दीर्घकाल तक शक्तिशाली मुगल सेना का प्रभावी सामना कर सके। प्रताप के अधीन मेवाड़ का पहाड़ी भूभाग ही था। इस पहाड़ी भूभाग का प्रताप ने सामरिक दृष्टि से एक ढाल के रूप में उपयोग किया। उन्होंने वनवासी भीलों के सहयोग से पहाड़ी नाकों की ऐसी किले-बन्दी के मुगल सेना प्रताप को जिन्दा या मुर्दा पकड़ ही नहीं सकी तथा अपने लिये रसद सामग्री भी प्राप्त नहीं कर सकी। हल्दीघाटी युद्ध के बाद गोगुन्दा में खाद्य-सामग्री के अभाव में मुगल सेना की जो दुर्दशा हुई, वह इसका प्रमाण है। भीलों के अलावा अन्य सभी असैनिक जातियों का सेना में उपयोग कर प्रताप ने मेवाड़ की सम्पूर्ण जनता को पारम्परिक सेना के रूप में सकारात्मक सहयोग व समर्पण की दृष्टि से बदल दिया। यह प्रताप की प्रशासनिक व नेतृत्व क्षमता को ही प्रदर्शित करता है। पड़ोसी राज्यों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाकर प्रताप ने अपनी दूरदर्शिता व सूझबूझ का परिचय दिया। ईडर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के शासकों से प्रताप के मधुर सम्बन्ध रहे। जोधपुर का राठौड़ चन्द्रसेन कई वर्षों तक मेवाड़ व उसके आसपास के क्षेत्रों में रहकर प्रताप का समर्थन करता रहा। जालौड़ के ताज खां



प्रताप द्वारा मुगल सेना की रसद आपूर्ति अवरुद्ध किए जाने के बाद मुगल सेना दाने-दाने को तरस गई

तथा हकीम खां का भी प्रताप को बराबर सहयोग रहा। बूंदी के हाड़ा सुर्जन ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली किन्तु उसका विद्रोही पुत्र दूदा प्रताप से सहयोगी बनकर मुगलों के विरुद्ध लड़ता रहा। सिरोही के राव सुरताण के साथ प्रताप ने अपनी पौत्री का विवाह कर, उनसे मधुर सम्बन्ध बना लिये। कुल मिलाकर प्रताप की पड़ोसी राज्यों के साथ यह नीति रही कि जो अकबर का शत्रु है,

वह मेवाड़ का मित्र है और जो अकबर का मित्र है, वह मेवाड़ का शत्रु है। 'बफर स्टेट' हमेशा शक्तिशाली शक्ति के साथ रहता है, लेकिन प्रताप ने इस बात को भी झुठला दिया और अकबर के विरुद्ध प्रताप के संघर्ष में छोटे-छोटे राज्यों ने हमेशा प्रताप का साथ दिया। उनकी इस सूझबूझपूर्ण नीति को अकबर समझ ही नहीं सका।

कतिपय इतिहासकारों ने प्रताप पर यह



राष्ट्रीय एकता की बात करने वाले इतिहासकार इस बात पर मौन धारण कर लेते हैं कि अकबर को अपने साम्राज्य की एकता को कायम रखने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। उज्जैन विद्रोह, बंगाल का विद्रोह, गुजरात का विद्रोह, तैमूर मिर्जाओं का विद्रोह आदि इसके प्रमाण हैं।

आरोप लगाया है कि उन्होंने अकबर के साथ संधि नहीं की और अकबर द्वारा स्थापित 'संघीय साम्राज्य' में सम्मिलित नहीं हुए। फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता तथा भारत को एकसूत्र में बनाये रखने में बाधा पैदा हुई तथा इससे मेवाड़ की बरबादी भी हुई। इतिहासकारों के इस आरोप पर प्रताप को कोसना न्यायोचित नहीं है। क्योंकि इन लोगों ने प्रताप के समकालीन संस्कृत व राजस्थानी साहित्य को नहीं देखा। वे आधुनिक युग के राष्ट्र व संघीय विचारों व मान्यताओं की नज़र में मध्यकाल की घटनाओं को देख रहे हैं, जो सही नहीं है। प्रताप आठवीं शताब्दी से चली आ रही अपनी स्वाधीनता को, वंश-गौरव को तथा अपनी अस्मिता को कैसे छोड़ते? इसकी रक्षा करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। इस तरह प्रताप अपनी दृष्टि से सही थे, दोषी था तो केवल अकबर, उसकी हठधर्मिता।

राष्ट्रीय एकता की बात करने वाले इतिहासकार इस बात पर मौन धारण कर लेते हैं कि स्वयं अकबर को अपने साम्राज्य की एकता को कायम रखने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। मालवा व जौनपुर में उज्जैन का विद्रोह, बंगाल का विद्रोह, गुजरात का विद्रोह, तैमूर मिर्जाओं का विद्रोह आदि इसके प्रमाण हैं। यहां तक कि अकबर के पुत्र सलीम ने भी अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, किन्तु मेवाड़ में ऐसा नहीं हुआ। मेवाड़ के सभी जागीरदार प्रताप के प्रति हमेशा विश्वसनीय बने रहे। यहां तक मेवाड़ की जनता अपने सुख-दुःख की

चिन्ता किये बगैर प्रताप के साथ कंधे से कंधा लगाकर जुड़ी रही। प्रताप का पुत्र और मेवाड़ का भावी उत्तराधिकारी कुंवर अमरसिंह भी प्रताप के हर संघर्ष में साथ रहा, लेकिन अकबर तो एक पिता के रूप में भी सफल नहीं हो सका। अकबर को महान बताने वाले इतिहासकार यह भूल जाते हैं कि वह कभी विश्वसनीय व्यक्ति नहीं रहा। उसने हमेशा अपने मित्रों व सहयोगियों के साथ विश्वासघात किया। बैरमखां जो अपने पिता के समय से लेकर अकबर को गद्दी पर बैठाने, शासन व्यवस्था को व्यवस्थित करने तथा अकबर के साम्राज्य विस्तार में एक वफादार सहयोगी की भूमिका में रहा, उसे अकबर ने अपने से दूर कर मक्का जाने को विवश किया और अंत में उसकी हत्या करवा दी। उसने कुंवर मानसिंह, जो रिश्ते में अकबर का सम्बन्धी था, उस पर भी कभी विश्वास नहीं किया।

अकबर ने प्रताप के विरुद्ध जब सेना भेजी और हल्दीघाटी युद्ध हुआ, उस समय मुगल सेना का नेतृत्व मानसिंह के साथ-साथ आसिफ खां को भी सौंपा। सूरत की एक घटना से यह स्पष्ट होता है कि शराब पीकर अकबर अपनी शक्ति को दिखाने के लिये तलवार की नोक को छाती पर मारने के लिये तैयार हो गया और जब मानसिंह ने उसे ऐसा करने से रोका तो उसने धक्का देकर उसे नीचे गिरा दिया और वह गला घोट कर उसे मार देता, यदि सैयद मुजफ्फर बीच में नहीं आता। माहम अनगा अकबर की धाय थी। वह उसका बड़ा सम्मान करता था किन्तु उसने उसके पुत्र अदहम खां से

नाराज होकर महलों से उसे नीचे गिराकर उसकी हत्या करवा दी और हत्या के बाद निष्ठुर अकबर ने अपनी धाय के पास जाकर अदहम खां की मृत्यु हो जाने की बात कही। माहम अनगा इस समाचार को सुनकर उसे बर्दाश्त नहीं कर सकी और उसकी मृत्यु हो गई।

ऐसी कई घटनाएं हैं जो अकबर के अविश्वसनीय और विश्वासघाती व्यक्तित्व को उजागर करती हैं। इसके विपरीत प्रताप अपने मित्रों, परिजनों के प्रति सदैव विश्वसनीय रहे। एक भी घटना ऐसी नहीं है जो प्रताप को अविश्वसनीय सिद्ध करे। यहां तक कि हल्दीघाटी युद्ध से पूर्व मुगल सेना का पड़ाव मोही गांव में था और प्रताप लोसिंग गांव में अपनी सेना के साथ रुके हुए थे। उस समय मानसिंह शिकार करने के उद्देश्य से प्रताप की सेना के बहुत करीब आ गया। प्रताप को यह खुफिया जानकारी प्राप्त हुई। इस पर प्रताप के सामन्तों द्वारा मानसिंह पर हमला कर उसे मार डालने की सलाह दी गई किन्तु प्रताप ने उसे को इस तरह धोखे से मारना क्षत्रियोचित मर्यादाओं के विपरीत मान कर सामन्तों की सलाह को स्वीकार नहीं किया। किन्तु अकबर ने कभी ऐसा नहीं किया।

अकबर ने ताकत के बल पर अपने साम्राज्य का तो विस्तार किया किन्तु अपने साम्राज्य से जुड़ी जल सीमाओं की वह सुरक्षा नहीं कर पाया। जल सीमाओं की इस अनदेखी के कारण पुर्तगालियों व अंग्रेजों को भारत में प्रवेश का मौका मिला। पुर्तगालियों ने गोवा को केन्द्र बनाया तथा अकबर के दरबार में भी उनका बराबर आना-जाना होता रहा। इसी तरह ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रतिनिधि जॉन मिल्लेनहाल अकबर के दरबार में आकर उसे यह विश्वास दिलाने में सफल रहा कि इंग्लैण्ड के साथ दोस्ती करने से क्या लाभ है? अकबर की इस अदूरदर्शिता के कारण ही भारत में अंग्रेजों को अपनी जड़ें जमाने का सुनहरा अवसर मिला, इस कारण आगे चल कर भारत को अंग्रेजों का गुलाम

इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अकबर एक विदेशी आक्रांता था। उसने अपनी ताकत के बल पर भारत के परम्परागत शासकों की स्वतंत्रता छीन कर छल-बल से अपने अधीन कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया, लेकिन न तो वहां के शासक और न ही वहां की प्रजा अकबर के साथ दिल से जुड़ पाई। कहीं न कहीं लगातार विद्रोह होते रहे। अकबर का चरित्र इस्लामिक आक्रांता का चरित्र है। दुश्मन के साथ विश्वासघात व क्रूरता उसके स्वभाव में थी। उसने हमेशा विरोधियों की निर्मम हत्या कर अपना उद्देश्य पूरा करने का प्रयास किया। 1568 में चित्तौड़गढ़ पर कब्जा कर 30,000 वृद्ध नर-नारियों का निर्मम कत्लेआम

इसका उदाहरण है। ऐसे अकबर को महान कैसे कह सकते हैं? इसी तरह 1576 के हल्दीघाटी के युद्ध से लेकर 1586 तक के दस वर्षों में अकबर ने मेवाड़ पर क्रूरतम सैनिक अभियान किये, लेकिन लगातार असफल रहा और अन्त में हार मान कर उसने सैनिक अभियान ही बन्द कर दिये। यह प्रताप की विजय थी। अकबर के साम्राज्य की तुलना में क्षेत्र-साधन व शक्ति की तुलना में प्रताप एक छोटे से भूभाग का शासक था। वे अकबर की तरह साधन सम्पन्न भी नहीं थे, लेकिन प्रताप ने उसका जिस शौर्य के साथ मुकाबला किया और मेवाड़ की स्वतंत्रता को अन्ततोगत्वा कायम रखा, इस दृष्टि से वे हमेशा के लिये स्वतंत्रता का प्रकाश-स्तम्भ बन गए। स्वतंत्रता के पुजारी प्रताप के इस संघर्ष ने भारत के स्वतंत्रता

अकबर चाहे कितना भी शक्तिशाली था किन्तु वह जननायक तब भी न बन सका और आज भी नहीं है। प्रताप के इसी महान चरित्र को आधार बनाते हुए प्रताप के जीवन काल से लेकर आज तक संस्कृत, राजस्थानी, हिन्दी, बांग्ला, गुजराती, मराठी, ओडिया, तेलुगु, मलयालम, पंजाबी और अंग्रेजी भाषा में विपुल साहित्य सर्जन हुआ है।

(लेखक राजस्थान विद्यापीठ के पूर्व शोध निदेशक हैं)

25 पाञ्चजन्य ■ 17 जून, 2018



महाराणा की रणनीति थी मारक

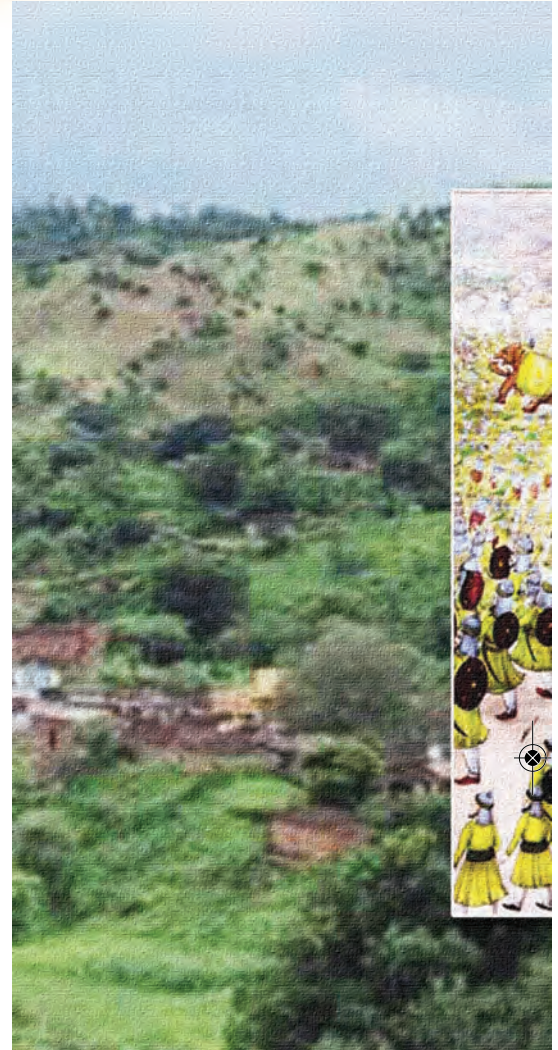
महाराणा प्रताप ने छापामार युद्ध के जरिए दुश्मनों को हराया। इस रणनीति को ही बाद में गुरिल्ला युद्ध कहा गया। युद्ध के दौरान वे खुद पहाड़ों और कंदराओं में रहते और मौका मिलते ही दुश्मन पर हमला कर देते। यही कारण था कि छोटी सैन्य टुकड़ी होने के बावजूद उन्होंने भारी-भरकम मुगल सेना को अनेक बार मार भगाया

■ डॉ. शिवकुमार मिश्रा

महाराणा

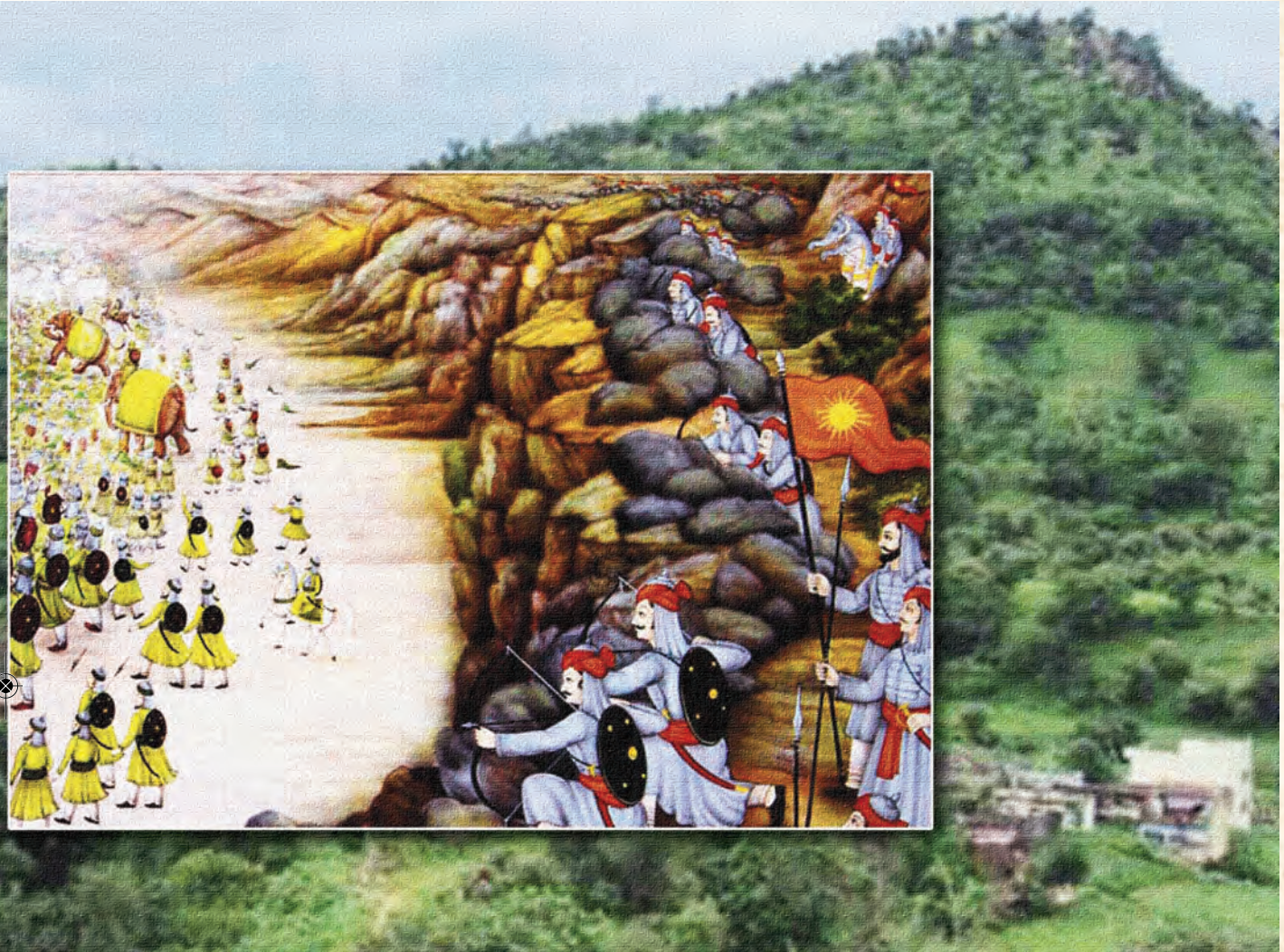
प्रताप को एक महान सेनानायक, कुशल सैन्य प्रबंधक एवं देश के स्वाभिमान व गौरव के रक्षक के रूप में न केवल राजस्थान, बल्कि संपूर्ण भारत में बहुत श्रद्धा एवं सम्मान के साथ जाना जाता है। उन्होंने एक ऐसी युद्धनीति एवं रणनीति की व्यवस्था की जिससे वर्षों तक मेवाड़ ने अदम्य वीरता दिखाते हुए मुगलों के विरुद्ध संघर्ष किया और उन्हें पराजित किया। महाराणा की गौरवपूर्ण गाथाएं आज भी मेवाड़ की अरावली पहाड़ियों में गुंजायमान हैं। 1572 में मेवाड़ की गद्दी पर बैठने के बाद प्रताप ने गोगुंदा को सैन्य प्रबंध की दृष्टि से अपना प्रमुख केंद्र बनाया। यह क्षेत्र दुर्गम पहाड़ियों से घिरा हुआ था। गोगुंदा के अतिरिक्त उदयपुर एवं कुंभलगढ़ दो अन्य प्रमुख केंद्र थे, जहां मेवाड़ की अन्य सैनिक टुकड़ियां रहती थीं।

महाराणा ने अपनी सेना को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा। प्रथम पैदल सेना एवं दूसरी घुड़सवार सेना। सेना को विभिन्न टुकड़ियों में बांटकर सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों पर तैनात किया। मेवाड़ में अरावली पर्वतमाला, सघन वन, ऊंची-नीची घाटियां, नदियां, दुर्गम संकरे मार्ग सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थे। प्रताप के लिए मुगलों के विरुद्ध मैदानी युद्ध के स्थान पर छापामार युद्ध पद्धति अधिक उपयोगी थी। इस कारण प्रताप ने मुगलों के विरुद्ध यही पद्धति अपनाई, जिसमें अरावली के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र अधिक उपयोगी सिद्ध हुए। छापामार युद्ध नीति के अंतर्गत बाह्य आक्रमणकारियों पर अचानक हमला बोलकर किसी सुरक्षित स्थान में जाकर अपनी सुरक्षा की जाती है, फिर अचानक शत्रुदल पर दोबारा हमला कर दिया जाता है। उनकी रसद सामग्री आदि को हानि पहुंचाई जाती है। प्रताप द्वारा अपनाई गई इस युद्धनीति के कारण मुगल घुड़सवारों के लिए मेवाड़ की इन



हल्दी घाटी के युद्ध में छापामार नीति मेवाड़ की सेना की शक्ति बनी थी

संकरी घाटियों से होकर आक्रमण करना कठिन हो गया। अपने सैन्य प्रबंध के अंतर्गत प्रताप ने ऊंचे पर्वतीय भाग के संकरे दर्रों पर चौकियां स्थापित कीं। इन संकरी घाटियों में द्वार लगाकर सुरक्षा की व्यवस्था की गई। इससे बाह्य आक्रमणकारियों की सेना के लिए संकरे दर्रों से होकर निकलना कठिन हो गया। यदि आक्रमणकारियों की सेना किसी तरह इन संकरे दर्रों को पार कर भी लेती तब भी उसे बहुत क्षति उठानी पड़ती। महाराणा



प्रताप के समय देबारी, चीरवा, रेसूरी, धांगड़मऊ, ऊंदरी घाटी, हल्दी घाटी से शत्रु सेना का प्रवेश करना कठिन था। उनकी सैन्य व्यवस्था में अरावली पर्वतमाला इस प्रकार भी सहायक रही कि इस पर्वतमाला में स्थित गुफाओं में प्रताप ने अपना कोष, शस्त्र एवं अन्य साधन सामग्री जुटाई। ऐसी गुप्त कंदराओं में चावंड के पास की जावरमाला, गोगुंदा के पास मायरा और मचीन आदि की गुफाएं प्रमुख हैं। मुगलों से संघर्ष से पूर्व प्रताप ने मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र के स्थानीय निवासियों को संगठित किया, जो उनकी युद्ध नीति एवं सैन्य प्रबंध के लिए उपयोगी

सिद्ध हुए। वन एवं पहाड़ी क्षेत्र में निवास कर रही भील जनजाति से प्रताप के बड़े आत्मीय संबंध थे। उन्होंने अपने सैन्य प्रबंध में इन लोगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। पहाड़ों पर बसे इस समुदाय के लोगों ने तीर, पत्थर आदि द्वारा मुगल आक्रमणकारियों को बहुत हानि पहुंचाई। भील जनजाति के लोग यहां की दुर्गम

पहाड़ियों एवं मार्गों से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने प्रताप का साथ देकर मुगल आक्रमणकारियों को भीतर की ओर जाने से रोका एवं संघर्ष कर वापस लौट जाने पर मजबूर किया। प्रताप की छापामार युद्ध पद्धति में भील बहुत सहायक सिद्ध हुए। राणा के सैन्य प्रबंध के अंतर्गत रसद सामग्री उपलब्ध करवाने, संदेशवाहक का

मुगल सेना का सेनापति मानसिंह जब गोगुंदा पहुंचा तो अचानक होने वाले हमले के डर से वह परेशान हो गया। वह गड्डे खुदवाकर रहता था। इस माहौल में वह मन से हार गया और अंत में गोगुंदा छोड़ने में भलाई समझी।



तथ्य यह है कि...

प्रताप के बारे में 'तारीख-ए-अकबरी' के लेखक हाजी मोहम्मद आरिफ कंधारी ने लिखा है, "प्रताप अपने समस्त साथियों तथा समकालियों से गर्व करता था कि मैं किसी के अधीन नहीं हूँ। आज तक कोई बादशाह अपनी लगाम की डोरी से उसके कान नहीं छेद सका तथा इस्लाम राज्य का उस देश में पदार्पण नहीं हुआ था। न जाने कितने बादशाह तथा सुल्तान उस प्रदेश को जीतने के लिए परेशानी तथा हसरत के साथ मर गए।..." इस प्रकार महाराणा प्रताप ने हल्दी घाटी के युद्ध (1576) से मृत्यु-पर्यंत (1597) अपना जीवन पर्वतीय क्षेत्र में व्यतीत कर लंबे संघर्ष के लिए बनाई गई नूतन युद्ध नीति एवं सैनिक प्रबंध का कुशलता से संचालन किया। इसका अवलंबन आगे चलकर वीर शिवाजी ने किया।

कार्य करने एवं गुप्तचर विभाग के कार्य संचालन में भीलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आवाज के संकेत देकर मारकर अथवा ढोल बजाकर संकेत के द्वारा वे एक से दूसरी पहाड़ी पर शीघ्रता से संदेश पहुंचा देते थे। पूंजा भील जैसे प्रताप के सहयोगियों ने मेवाड़ के सुरक्षा प्रबंध में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अपने सामंतों को उचित सम्मान प्रदान कर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष में अपने साथ लिया। प्रताप का कुशल सैन्य प्रबंध, स्थानीय निवासियों एवं सामंतों आदि को साथ लेने की नीति, त्याग एवं देशप्रेम के कारण मुगलों के विरुद्ध प्रताप का युद्ध संपूर्ण मेवाड़ की जनता का युद्ध बन गया। प्रताप ने अपनी युद्ध नीति एवं सैन्य प्रबंध के अंतर्गत पूर्वी मैदानी भाग को उजाड़ दिया।

मेवाड़ के मैदानी भाग में रहने वाले लोगों को पहाड़ी घाटियों के कुछ भागों में बसाया गया। उन्होंने आदेश जारी करवाया कि मैदानी भाग के खेतों में अन्न उत्पादन नहीं किया जाए, जिससे शत्रु सेना को रसद सामग्री प्राप्त नहीं हो सके। पहाड़ी क्षेत्र में बसने से लोग न केवल सुरक्षित महसूस करने लगे बल्कि ऊबड़-खाबड़ वाले पहाड़ी क्षेत्र में खेती होने लगी और ये क्षेत्र आबाद होने लगे। अरावली पर्वत का मध्य पठारी भाग उपजाऊ था। लगातार मुगल आक्रमणों के बाद भी प्रताप ने कृषि उत्पादन की ऐसी व्यवस्था की जिससे मेवाड़ के सैनिकों को खाद्य सामग्री के

संकट का सामना न करना पड़े। जब मुगलों का आक्रमण होता तब घाटियों में बसने वाले स्थानीय लोग ऊंचे पर्वतों के घने वन वाले इलाके में चले जाते और रसद सामग्री आदि अपने साथ ले जाते। रसद सामग्री के अभाव में शत्रु की सेना कठिनाइयों से घिरने लगी।

हल्दीघाटी के युद्ध के समय पहले मोर्चे में राजपूत सैनिकों ने पहाड़ी नाकों से नीचे उतरकर मुगल सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूनी, जो स्वयं इस युद्ध में मुगल सेना की ओर से लड़ रहा था, भाग खड़ा हुआ।

पहले मोर्चे में सफल होने से राजपूत सैनिक 3 बनास नदी के कांटे वाले मैदान में आ गए, जिसे रक्त तलैया कहा जाता है। मुगल सेना मैदानी युद्ध की अभ्यस्त थी। हल्दीघाटी के युद्ध में राणा ने घायल होने के बाद भी धैर्य रखते हुए अपनी लंबी सैन्य रणनीति के तहत मैदानी इलाके से पहाड़ों की ओर जाने का निश्चय किया। यहां रसद सामग्री, जल, औषधियां आदि उपलब्ध थी। कोल्हारी गांव

पहुंचकर उन्होंने अपने घायल सैनिकों का इलाज करवाया और कोल्हारी गांव के निकट कमलनाथ पर्वत पर स्थित आवरगढ़ में सामरिक सुरक्षा की दृष्टि से अपनी अस्थायी राजधानी स्थापित की। गोगुंदा के निकट मजेरा गांव के पास रणेराव के तालाब पर प्रताप ने अपनी सैनिक छावनी बनाई, जहां से मैदानी भाग में अपने सैनिकों को भेजकर मुगल सैन्य चौकियों को नष्ट किया और वहां से मुगलों को मार भगाया।

इसके बाद कुंभलगढ़ को अपना निवास स्थान बनाकर इसकी किलेबंदी करवाई।

1576-85 : युद्ध नीति एवं सैन्य प्रबंध

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब मुगल सेना अपने डेरे में लौटी तब भीलों ने उन्हें रातभर लूटा। घात-प्रत्याघात की विधि से उन्हें चैन न लेने दिया। प्रताप के अधिकारियों ने गोगुंदा को खाली करवा दिया था। युद्ध के अगले दिन मुगल सेनापति मानसिंह अपने सैनिकों के साथ गोगुंदा आया। वह अचानक आक्रमण की संभावना से भयभीत रहा। इसलिए वह खाइयां खुदवाकर एवं दीवार बनवाकर किसी तरह रहने लगा।

प्रताप ने गिरवा के पहाड़ी क्षेत्रों के नाकों पर सिपाहियों को लगाया, जिन्होंने गोगुंदा में ठहरी हुई मुगल सेना की रसद बंद कर दी। मुगल सेना को रसद पहुंचाने वाले बंजारों को रोकने के लिए गोगुंदा पहुंचने के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिए गए। मुगल सैनिक एक प्रकार से यहां कैदियों की तरह जीवन



अकबर ने प्रताप के चरित्र को समझने में भूल की। वह एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालना चाह रहा था, किन्तु प्रताप किस मिट्टी के बने थे, उसका अनुमान वह नहीं लगा सका। समस्याएं महाराणा को चिंतित नहीं करती थीं, अपितु दृढ़ता प्रदान करती थीं।



व्यतीत करने लगे। अपने घोड़ों एवं ऊंटों को मारकर खाने लगे...

मुगल सैनिकों को रोटी न मिलने पर उन्हें जानवरों का मांस एवं आम के फलों पर जीवित रहना पड़ा। परिणामतः बहुत से सैनिक रोगग्रस्त हो गए। सैनिकों की स्थिति दयनीय थी। मानसिंह गोगुंदा में तीन माह व्यतीत करने के बाद भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाया। भगवान दास, मानसिंह, मिर्जा खानखाना, कासिम खां आदि गोगुंदा पर कब्जा करने के लिए भेजे गए।

के बाद प्रताप ने कुंभलगढ़ से लेकर ऋषभदेव के दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में मुगलों से संघर्ष किया। प्रताप की रक्षात्मक युद्ध नीति में मुगल आधिपत्य वाले प्रदेशों में अचानक आक्रमण करने की नीति सम्मिलित थी। जब मुगल सैनिक कुंभलगढ़, गोगुंदा आदि स्थानों में संघर्ष करते उस समय प्रताप की सैनिक टुकड़ियां मालवा, गुजरात आदि के प्रदेशों पर आक्रमण कर देती थी। वे कई दिनों तक अपने परिवार के साथ एक लुहार के यहां ठहरे। वे लगातार अपना स्थान

आक्रमण करना सरल हो गया। पहाड़ों पर निवास करते हुए उन्होंने उन स्थानों पर पुनः लोगों को बसाया एवं खेती प्रारंभ करवाई, जिन स्थानों को या तो शत्रुओं को रसद सामग्री आदि प्राप्त न हो इसलिए नष्ट कर दिया गया था या शत्रुओं ने उन स्थानों पर आग लगा दी थी। हमें ऐसे अनेक गांवों के उदाहरण मिलते हैं जिन्हें प्रताप ने पुनः बसाकर आबाद करवाया। पीपली, ढोलान, टीकड़ आदि गांवों को बसाकर यहां के लोगों को पट्टे प्रदान किए गए। महाराणा प्रताप ने सैन्य सुरक्षा की दृष्टि से अपने पड़ोसी राजपूत राज्यों से मधुर संबंध बनाकर मुगल गतिविधियों के विरुद्ध उनका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया। मित्रता की कड़ी में उन्होंने सिरौही के राव सुल्तान से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। अपने सैन्य प्रबंध के अंतर्गत पूजा भील जैसे कई भील योद्धाओं एवं हाकिम खां सूर जैसे मुस्लिम सेनापतियों को उच्च स्थान देकर सामाजिक समरसता एवं मजहबी सहिष्णुता का परिचय दिया।

प्रताप के बारे में 'तारीख-ए-अकबरी' के लेखक हाजी मोहम्मद आरिफ कंधारी ने लिखा है, "प्रताप अपने समस्त साथियों तथा समकालियों से गर्व करता था कि मैं किसी के अधीन नहीं हूँ। आज तक कोई बादशाह अपनी लगाम की डोरी से उसके कान नहीं छेद सका तथा इस्लाम राज्य का उस देश में पदार्पण नहीं हुआ था। न जाने कितने बादशाह तथा सुल्तान उस प्रदेश को जीतने के लिए परेशानी तथा हसरत के साथ मर गए।..."

इस प्रकार महाराणा प्रताप ने हल्दी घाटी के युद्ध (1576) से मृत्यु-पर्यंत (1597) अपना जीवन पर्वतीय क्षेत्र में व्यतीत कर लंबे संघर्ष के लिए बनाई गई नूतन युद्ध नीति एवं सैनिक प्रबंध का कुशलता से संचालन किया। इसका अवलंबन आगे चलकर वीर शिवाजी ने किया।

(लेखक राजकीय कला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा में इतिहास विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं)



हल्दी घाटी के युद्ध में मुगल सेना के पराजित होने के बाद अकबर खुद 3 अक्टूबर, 1576 को गोगुंदा पहुंचा। काफी समय तक वहां रहने के बाद भी वह महाराणा को नहीं खोज पाया। अंत में वह वहां से चला गया। इसके बाद महाराणा ने रणनीति बदली और इसका सुखद परिणाम निकला।

स्वयं अकबर हल्दीघाटी के युद्ध के बाद 3 अक्टूबर, 1576 को गोगुंदा पहुंचा। वह इधर-उधर राणा की तलाश करता रहा परंतु अपने प्रयत्नों में विफल होकर गुजरात की ओर निकल गया।

मुगल सैनिकों के गोगुंदा से निकलने के बाद प्रताप ने कुंभलगढ़ से लेकर सराड़ा तक तथा गोडवाल से लेकर आसींद और भैंसरोडगढ़ के पहाड़ी नाकों पर भीलों की विश्वस्त टोलियों को बसा दिया। भील शत्रु को भीतर आने से रोकते थे। प्रताप ने इन भील रक्षकों के साथ अपने अन्य सैनिक भी इन नाकों पर लगाए। जैसे-जैसे मुगल आक्रमणों में शिथिलता आई, महाराणा प्रताप मेवाड़ की खोई हुई भूमि पर पुनः अधिकार स्थापित करने चले गए। 1576 एवं 1585 के बीच अकबर द्वारा अपने चार विश्वसनीय सेनानायकों के नेतृत्व में सात बार मुगल सेना मेवाड़ के विरुद्ध भेजी गई।

अकबर के इन सेनानायकों को सफलता नहीं मिली। हल्दीघाटी के युद्ध

बदलते रहे। कभी किसी पहाड़ी पर रहते, तो कभी दूसरी पहाड़ी पर चले जाते थे। उन्होंने छापामार युद्ध प्रणाली के अंतर्गत ही ऐसी रणनीति बनाई। मुगल मैदानी युद्ध करने में निपुण थे। इस कारण वे इन पहाड़ी इलाकों में सफल नहीं हो सके।

1585 से 1597 तक प्रताप ने दक्षिण पर्वतीय दुर्गम क्षेत्र में चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया जहां मुगल सेना का पहुंचना बहुत कठिन था। उन्होंने मेवाड़ के पश्चिम-दक्षिण भाग के छप्पन के इलाके पर आधिपत्य स्थापित किया। चावण्ड के इलाके में महलों का निर्माण करवाया। प्रताप द्वारा चावण्ड को अपनी राजधानी बनाने से अकबर की मेवाड़ को घेर कर एकाकी करने की नीति सफल नहीं हो पाई।

चावण्ड में रहने से प्रताप का सिरौही, ईडर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, गुजरात आदि के प्रदेशों से निकट संबंध बना रहा और उनका मेवाड़ से बाहर निकलकर गुजरात एवं मालवा के क्षेत्रों पर अचानक



ज्ञान और समरसता का प्रताप

महाराणा प्रताप एक कुशल शासक होने के साथ-साथ कृषि, खेती-बाड़ी, जल संचयन और संरक्षण के अच्छे जानकार थे। उन्होंने इन जानकारीयों को विद्वानों के जरिए लिपिबद्ध करवाया। प्रताप ने अपने राज्य की आर्थिक स्थिति को ठीक रखने में भी योगदान दिया

■ डॉ. मनोरमा उपाध्याय

प्रताप

भारतीय इतिहास में संस्थापित ऐसा नाम है जो शक्ति, साहस एवं मातृभूमि प्रेम का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। महाराणा प्रताप से संबंधित 'महान वृत्तांतों' (खमनौर का युद्ध) से हम सभी भलीभांति परिचित हैं, किन्तु हमें उन 'सूक्ष्म वृत्तांतों' को भी जानना होगा जो प्रताप के वास्तविक रूप में इतिहास योगदान को परिलक्षित करते हैं। उत्तर-आधुनिक इतिहास लेखन में 'सूक्ष्म-वृत्तांतों' का अत्यधिक महत्व है, जो आधारभूत हैं तथा युगीन तत्वों को जन्म देते हैं। इतिहास का निर्माण इन्हीं से होता है। प्रताप ने न केवल शक्तिशाली मुगल साम्राज्य से ही लोहा लिया, वरन् तत्कालीन मेवाड़ में 'विरोध एवं स्वतंत्रता की अवधारणा' को स्थापित किया जो आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रेरणा बनी। कर्नल



अपनी सेना के भील योद्धाओं के साथ महाराणा प्रताप

जेम्स टॉड के विवरण को जब भारत के अन्य क्षेत्रों में पढ़ा गया, तो प्रताप एक प्रेरणादायी राष्ट्रीय व्यक्तित्व बन कर उभरे। तत्कालीन मुगल सत्ता को चुनौती देना एक दुष्कर कार्य था, किन्तु प्रताप ने न केवल मुगलों के प्रति प्रतिरोध की नीति को ही अपनाया, वरन् मुगल सेना को

कभी पूरे मेवाड़ पर अधिकार करने का अवसर नहीं दिया। अकबर द्वारा कई बार आक्रमण के उपरान्त मेवाड़ का कुछ हिस्सा स्वतंत्र ही बना रहा।

उन्होंने समाज के उपात्तिक वर्ग एवं उपाश्रयी वर्ग - भीलों की सहायता से अपनी स्थिति को न केवल सुदृढ़ किया,



वरन् प्रतिकूल परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाया। चित्तौड़ एवं आसपास के इलाके छिन जाने के बाद प्रताप ने 'पहाड़ी कृषि एवं उत्पादन' की नीति को अपनाया तथा कुछ विशिष्ट व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करके आर्थिक सुदृढ़ीकरण का वातावरण तैयार किया।

प्रताप की इतिहास को सबसे बड़ी देन उस प्राचीन ज्ञान के संरक्षण की है, जो पीढ़ियों से शास्त्रीय साहित्य में संचित था। चक्रपाणि मिश्र ने 'विश्व-वल्लभ' की रचना कर जल-संचय, वृक्षायुर्वेद, भवन-मंदिर निर्माण के प्राचीन ज्ञान को संरक्षित किया। वराहमिहिर, नारह, शाङ्गधर आदि के ज्ञान को जनोपयोगी एवं युगानुकूल बनाकर प्रस्तुत किया। जिस प्रकार ज्ञान को आज हम 'हाइड्रोलॉजी' एवं 'हॉर्टीकल्चर' के नाम से जानते हैं, उस ज्ञान को संरक्षित एवं जनोपयोगी बनाने का कार्य चक्रपाणि मिश्र द्वारा प्रताप के आदेश पर किया गया। वहीं विज्ञान एवं तकनीक का विकास वह

जिस प्रकार ज्ञान को आज हम 'हाइड्रोलॉजी' एवं 'हॉर्टीकल्चर' के नाम से जानते हैं, चक्रपाणि मिश्र द्वारा प्रताप के आदेश पर उस ज्ञान को संरक्षित एवं जनोपयोगी बनाने का कार्य किया गया। यह जानकारी अधिकांश पुस्तकों में नहीं है।

क्षेत्र है, जो प्रताप के संबंध में लिखे गए हजारों पृष्ठों में नहीं मिलता।

प्रताप ने अकबर के विरुद्ध पठान-राजपूत गठजोड़ का निर्माण किया। मुगलों के विरुद्ध उन्होंने हाकिम खां सूर एवं जालौर के ताज खां तथा बूंदी, सिरौही, ई-डर, जोधपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि क्षेत्रों से राजपूतों का समर्थन प्राप्त किया। बूंदी के सुरजन हाड़ा के पुत्र दूदा, डूंगरपुर के रावल आसकरण का पुत्र सहसमल, सिरौही के राव सुरताण का सहयोग प्राप्त किया।

मुगल सत्ता के विरुद्ध प्रताप ने प्रतिरक्षा की नीति अपनाई। उनका मानना था कि लंबे समय तक युद्ध जारी रखकर तथा

छापामार पद्धति अपनाकर शत्रु के मनोबल को तोड़ा जा सकता है। जैसा कि प्रो. आर. पी. व्यास ने लिखा है, "राणा की नई नीति रक्षात्मक थी। इसका मूल उद्देश्य मेवाड़ राज्य पर मुगल आधिपत्य को रोकना तथा राज्य में जन-धन की रक्षा करते हुए आक्रमणकारी को अधिकाधिक क्षतिग्रस्त करना था। अपनी रक्षा हेतु यदा-कदा मुगल शासित प्रदेशों पर आकस्मिक आक्रमण करना, मेवाड़ के रास्तों से आते-जाते शाही काफिलों की लूट-पाट करके आवश्यक धन प्राप्त करना और शत्रु के दबाव को कम करने के लिए उपयुक्त साधन जुटाना, इस नीति का



महाराणा राज्य के बुद्धिजीवियों, लेखकों और अन्य विद्वानों के साथ अक्सर मंत्रणा किया करते थे



तथ्य यह है कि...

जीवाशाह की जमा खर्च की बहियों तथा मामाशाह की बहियों से स्पष्ट है कि प्रताप के पास धन की लगातार कमी नहीं थी। 'आइने अकबरी' तथा डॉ. हुकुम सिंह भाटी के लेख 'नैणसी मुणोत की ख्यात' से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रताप ने पूरी आर्थिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण किया। चावड़ को नई राजधानी बनाया (जो उन्होंने छप्पन के राठौड़ से जीता था) तथा उस पास के जागरा, आवड़, थार, राहंग, कुंभलनेर, मछावली, भंडेर, नाहेसर के पहाड़ी क्षेत्रों को खेती योग्य बनाया। चावड़ के निकट तांबा, चांदी, जस्ता, लोहा का खनन किया गया।

उद्देश्य रहा। नीति का मुख्य उद्देश्य संपूर्ण पर्वतीय भाग की किलेबंदी करना, शत्रु का राज्य में प्रवेश होने से रोकना, प्रवेश हो जाने पर उसे अधिकाधिक हानि पहुंचाना जिससे त्रस्त होकर वह वापस लौट जाए। छापामार युद्ध प्रणाली से शत्रु की सैनिक चौकियां उखाड़ दी जाएं तथा उन्हें वापस भागने पर बाध्य किया जाए।'

जैसा कि सामान्य भ्रम है कि गोगुंदा की पहाड़ियों में भटकने वाले प्रताप की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, यह विचार उचित नहीं है। जीवाशाह की जमा खर्च की बहियों तथा मामाशाह की बहियों से स्पष्ट है कि प्रताप के पास धन की लगातार कमी नहीं थी। 'आइने -अकबरी' तथा डॉ. हुकुम सिंह भाटी के लेख 'नैणसी मुणोत की ख्यात' से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रताप ने पूरी आर्थिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण किया। चावड़ को नई राजधानी बनाया (जो उन्होंने छप्पन के राठौड़ से जीता था) तथा उस पास के जागरा, आवड़, थार, राहंग, कुंभलनेर, मछावली, भंडेर, नाहेसर के पहाड़ी क्षेत्रों को खेती योग्य बनाया। चावड़ के निकट क्षेत्रों में तांबा, चांदी, तथा जस्ता एवं लोहा प्रचुर मात्रा में था जिसका खनन किया गया। साथ ही गुजरात तथा मालवा जाने वाले व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित किया गया। सामंतों को पहाड़ी क्षेत्रों में नई जागीरें प्रदान की गईं तथा केन्द्रीकृत प्रशासन तथा सैन्य व्यवस्था का निर्माण किया गया। भीलों के मध्य 'कीका' के रूप में विख्यात प्रताप ने भीलों को अपने समकक्ष समझा एवं

तदनुसार सम्मान प्रदान किया। अमरकाव्य के इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि उदयसिंह द्वारा प्रताप को प्रतिदिन एक पेटिया (कच्चा खाना) भेजा जाता था। प्रताप भीलों के साथ बैठकर उसका उपयोग करते थे। प्रताप की इस उदार नीति एवं सम्मान प्रदर्शन ने भीलों की स्वामिभक्ति सुनिश्चित कर ली। उस समय इस जनजाति को सम्मानजनक स्थान दिलवाना प्रताप का एक बड़ा योगदान था। प्रताप के काल में भीलों का योगदान सर्वविदित है। यहां तक कि मेवाड़ के ध्वज में भीलों का अंकन है तथा राजा के प्रथम टीके का अधिकार भी भीलों को ही था।

स्त्रियों के प्रति प्रताप का दृष्टिकोण एक घटना से स्पष्ट होता है। साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि प्रताप ने खानखाना की स्त्रियों को ना केवल सम्मानपूर्वक वापस भेजा, वरन् उन्होंने वस्त्राभूषण भी भेंट किए।

प्रताप ने विज्ञान एवं तकनीकी के विकास को भी प्रोत्साहित किया। चक्रपाणि द्वारा लिखित 'वृक्षायुर्वेद' में कृषि विज्ञान के उदाहरण मिलते हैं। वृक्षों के प्रकार, खाद के प्रकार, खाद का निर्माण, वृक्षों में रोगों का उपचार, वृक्षों को फलदार बनाने के प्रयोगों का विस्तृत विवरण इस अध्याय में मिलता है। उदाहरण के तौर पर मिश्र लिखते हैं कि कुछ पौधे बीजों से उत्पन्न होते हैं, कुछ लताओं से और कुछ दोनों से -

बीजोद्भवः काण्डमवाच्छचन्य

लता द्रमाद्याः।

उक्तास्तथान्यैपि च बीजकाण्ड

भवाविभेद कथयामि तेजा।

जैसे आम, चंपा, महुआ, कैथ, जामुन, पुनाग, बिल्व, नकुल, कचनार, आदि बीजों से ही रोपित होते हैं जबकि चमेली, तम्बूलिका, केतकी इत्यादि डालियों से। मिश्र किस पौधे को कितना जल दिया जाना चाहिए, इसका विवरण भी देते हैं।

तिल का तेल, कबूतर की बीट, बकरी की बीट, पशु वसा एवं रक्त का प्रयोग वे खाद के रूप में करने का वर्णन करते हैं जिससे मृतप्रायः वृक्षों को भी जीवन दिया जा सकता है। वे कुण्ठित जल का उपयोग भी बताते हैं। उपरोक्त सभी वस्तुएं शर्करा, फोस्फोरस, प्रोटीन एवं फैटी एसिड्स का निर्माण करती हैं, जो एक अत्यधिक समृद्ध जैविक खाद का निर्माण करती हैं। कीटनाशक के रूप में धुएं एवं ध्वनि की विधि भी बताते हैं।

आधुनिक मृदा-विभाजन जैसा ही मृदा विभाजन मिश्र की रचना है। यह "मृदा विज्ञान" की प्राचीनता को भी दर्शाता है। मृदाओं के भेद के साथ ही उनका रासायनिक निर्माण भी लिखा गया है। जैसे-मलिन, पाण्डुर्य, श्यामल, धवल, अरुण एवं पीत तथा उनके रासायनिक तत्व हैं-अक्षारीय, क्षारीय, लवण, कटु, तिक्त एवं कास्य।

इसी प्रकार जल प्राप्ति के विभिन्न उपाय-'उदकार्गलनिरूपम्' में निहित हैं। जैसे अर्जुन, साल, बरगद, जामुन आदि वृक्षों को निकट जल प्राप्त होता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं। साथ ही जल को शुद्ध करने के उपाय भी मिलते हैं जिन्हें आजकल "फाइटोकेमिस्ट्री" के अंतर्गत रखा जाता है। साथ ही जलाशय निर्माण का भी विस्तृत वर्णन है। इस प्रकार प्रताप का इतिहास को योगदान न केवल एक योद्धा तथा शासक के रूप में था, वरन् प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के संरक्षक के रूप में भी अद्वितीय है।

(लेखिका जोधपुर स्थित महिला पी. जी. महाविद्यालय की प्राचार्य हैं।)



सुप्रसिद्ध

इतिहासकार डॉ. रघुवीर सिंह के अनुसार, महाराणा प्रताप की वीरगाथा ने अंग्रेजी साम्राज्य से जूझने वाले भारत के क्रांतिकारियों को भी प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान की थी। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी लिखा है, “जब तक संसार में वीरों की पूजा होती रहेगी तब तक महाराणा प्रताप का उज्ज्वल और अमर नाम लोगों को स्वतंत्रता और देशाभिमान का पाठ पढ़ाता रहेगा।” अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी ने ‘प्रताप’ समाचार पत्र के संपादकीय में लिखा, “जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता, स्वतंत्रता और तपस्या का आदर है, तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार आपको (प्रताप को) आदर की दृष्टि से देखेगा।”

संपूर्ण भारत में अंग्रेजी भाषा और शिक्षा प्रणाली के अधिकाधिक प्रसार से स्वाधीनता प्राप्ति की लालसा को अप्रत्यक्ष रूप से बल मिला। इस कार्य में कर्नल जेम्स टॉड का विशेष और महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जब भारत के अन्य प्रांतों के अंग्रेजी भाषाविदों ने टॉड की ‘एनाल्स ऐंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान’ को पढ़ा, तब मुगलों के साथ महाराणा प्रताप के आजीवन सफल संघर्ष की वीरगाथा संपूर्ण देश में फैल गई और उससे प्रभावित होकर भारत की अनेक भाषाओं के प्रमुख साहित्यकार प्रताप की ओर आकर्षित हुए। उनके जीवन प्रसंगों को लेकर उन्होंने अपनी-अपनी भाषाओं में अनेक प्रेरक नाटक, उपन्यास, कहानियां और काव्य रचे।

कर्नाटक

राणा प्रताप के संबंध में कन्नड़ भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। वासुदेवय्या ने अपनी पुस्तक ‘आर्य कीर्ति’ में प्रताप के



साहित्य ने किया है इस शौर्य को नमन

देश के कोने-कोने में स्थानीय लेखकों-इतिहासकारों ने अपनी भाषा-बोली में गीतों, उपन्यासों एवं नाटकों के माध्यम से महाराणा प्रताप की अद्भुत वीरता को समाज के सामने रखने का काम किया

■ डा. मनोहरसिंह राणावत



जीवन का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। लि. वे. गलगनाथ का उपन्यास 'राणा प्रताप सिंह' सारे कर्नाटक में लोकप्रिय हुआ। साशि. मरुलरुया के नाटक 'राणा' को भी रंगमंच पर बहुत ख्याति मिली। चित्तौड़ के शासकों और प्रताप के बलिदान से प्रभावित होकर ही 1824 में कर्नाटक में सर्वप्रथम किन्नूर की रानी चैनम्मा आजादी के लिये अंग्रेजों से लड़ने को तैयार हुई थीं। तदनंतर कर्नाटक में स्वाधीनता के लिये जो संघर्ष चला, उसमें स्थानीय नेताओं ने प्रताप और शिवाजी को अपना आदर्श माना व उनके त्याग और बलिदान की गाथा को गाकर जन जागृति पैदा की। श्री नागेश हत्वार के अनुसार राणा प्रताप के त्याग, बलिदान, राष्ट्रप्रेम आदि गुणों का प्रभाव कर्नाटक की जनता पर उतना ही गहरा पड़ा, जितना कि अन्य प्रदेशों पर।

महाराष्ट्र

राजपूतों का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान होने के कारण अनेक मराठी विचारकों ने जीवनी और इतिहास विधाओं में राजपूत इतिहास का अध्ययन किया। जीवनी में महाराणा प्रताप को स्थान मिला और महाराष्ट्र में उनके जीवन के आधार पर मराठी में अनेक नाटक, उपन्यास और काव्य ग्रंथ रचे गए। अ.वा. वरवे ने 'महाराणा प्रताप सिंह' प्रबंध काव्य में प्रताप की पत्नी को भी उनके समान महत्वपूर्ण स्थान दे उनकी वीरता का वर्णन किया है। ह. कुलकर्णी के 'प्रतापी प्रताप सिंह' और ग. बोडस के 'राणा प्रताप' नाटकों की रचना तथा दुर्गादास तिवारी का 'महाराणा प्रताप सिंह', ना. ग्रेरे लिखित 'महाराणा प्रताप सिंह' प्रबंध काव्य प्रमुख हैं। लोक हितवादी द्वारा 1892 में प्रकाशित 'उदेपुरचा इतिहास' ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि दो वर्ष में इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए। महाराणा प्रताप पर 1930 तक लिखे गए वीर रस के नाटकों,



19वीं सदी के अंतिम दशक में महाराष्ट्र में विशद आयोजन के रूप में गणेशोत्सव मनाया जाने लगा था। तब उन समारोहों के अवसर पर शिवाजी के साथ ही महाराणा प्रताप का चित्र भी प्रदर्शित किया जाने लगा था।

उपन्यासों, प्रबंध काव्यों और ऐतिहासिक ग्रंथों ने महाराष्ट्र के जनजीवन में नव चेतना का संचार किया और स्वतंत्रता सेनानियों को भी प्रेरणा दी। स्वातंत्र्य वीर सावरकर और उनके सहयोगी कवि गोविन्द ने स्वयं स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। गोविन्द ने अपने भारत प्रशस्ति काव्य में राणा प्रताप को भारत के श्रेष्ठ पुरुषों में माना है। 19वीं सदी के अंतिम दशक में महाराष्ट्र में विशद आयोजन के रूप में गणेशोत्सव मनाया जाने लगा था। तब उन समारोहों के अवसर पर शिवाजी के साथ ही महाराणा प्रताप का चित्र भी प्रदर्शित किया जाने लगा था।

गुजरात

गुजराती साहित्यकारों ने भी प्रताप की

देशभक्ति, स्वाभिमान, मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कवि नर्बद ने मेवाड़ के इतिहास और महाराणा प्रताप के बारे में जानकारी दी थी। तदनंतर गुजराती साहित्यकार मणिभाई भूलाभाई पटेल, गणपतराम राजाराम भट्ट और जयन्तिलाल महेता ने क्रमशः 'अश्रुमति', 'प्रतापसिंह', 'प्रताप' और 'मेवाड़ का सिंह' आदि नाटकों की रचना की। जूनी धंधादारी रंगभूमि संस्था ने प्रताप पर लिखे नाटकों को गुजरात के अनेक नगरों में मंचित किया। बसंत ने 'शौर्य तर्पण' (1908) ना.वि.ठक्कर ने 1906 में 'हल्दीघाटी नू युद्ध' और छगनलाल ने 1946 में 'प्रतापी प्रताप' उपन्यास की रचना की। आंध्रप्रदेश में तेलुगु साहित्यकारों ने भी प्रताप को तेलुगु भाषा



तथ्य यह है कि...

बंगाल में सर्वप्रथम के. दास गुप्ता ने कर्नल टॉड के आधार पर 'राजपूत काहेना' ग्रंथ की बांग्ला में रचना की। उसमें राजपूताना के प्रमुख शासकों का विवरण है। तदनन्तर रमेशचन्द्र दत्त ने 1879 में 'राजपूत जीवन संध्या' उपन्यास प्रस्तुत किया।

में पर्याप्त स्थान दिया है। लक्ष्मी नरसिम्हा के 'राजस्थान कथावली' ग्रंथ में हिन्दुस्थान के प्रमुख वीरों में प्रताप के बारे में विस्तृत विवरण है। शिवशंकर शास्त्री ने बांग्ला उपन्यास 'राजपूत जीवन संध्या' का तेलुगु में अनुवाद किया था। बेदुला सत्यनारायण शास्त्री, श्रीपद कामेश्वर राव और जी. वी. सुब्बा राव ने राणा प्रताप पर नाटक लिखे। प्रो. के. वी. आर. नरसिम्हा के अनुसार महाराणा प्रताप हमारे स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के अग्रज हैं। उनके जीवन पर लिखे गये नाटक, उपन्यासों आदि से स्वतंत्रता सेनानियों को प्रेरणा मिली है।

बंगाल

टॉड की 'एनाल्स ऐंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान' का सर्वप्रथम बंगाल के शिक्षाविदों और साहित्यकारों ने अध्ययन किया। टॉड द्वारा प्रताप पर लिखे रोचक विवरण ने बंगाल के लेखकों को सर्वाधिक प्रभावित किया। बंगाल में सर्वप्रथम के. दास गुप्ता ने टॉड के आधार पर 'राजपूत काहेना' ग्रंथ की बांग्ला भाषा में रचना की। इसमें राजपूताना के प्रमुख शासकों का विवरण है। तदनन्तर रमेशचन्द्र दत्त ने 1879 में 'राजपूत जीवन संध्या' उपन्यास की रचना की। यह

उपन्यास प्रताप को ही प्रमुख पात्र बना कर लिखा गया है। हरनचन्द्र रक्षित और दामोदर मुखर्जी ने भी प्रताप को आधार बनाकर उपन्यास लिखे। ये सभी उपन्यास बंगाल में बहुत लोकप्रिय हुए।

1879 में ज्योतीन्द्रनाथ टैगोर ने 'अश्रुमति' नाटक की रचना की। 1905 में द्विजेन्द्रलाल राय ने 'राणा प्रताप' नाटक लिखा। इसमें महाराणा प्रताप का चित्तौड़ छोड़ना, कुंभलमेरू के पहाड़ों में निवास, अकबर द्वारा प्रताप को अधीनता स्वीकार करने हेतु दबाव और अन्त में हल्दीघाटी युद्ध, मानसिंह से मनमुटाव, प्रताप के भाई की भूमिका आदि का विवरण है। एस. मुखोपाध्याय के अनुसार "यह बांग्ला साहित्य की उन कुछ रचनाओं में से एक है जिन्होंने बंगाल के लोगों में असली देशभक्ति जगाई।" इस प्रकार महाराणा प्रताप की वीर गाथा भारत के गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र, महाराष्ट्र और बंगाल जैसे दूरस्थ प्रदेशों के जनसाधारण में फैल गई और स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता की साधना के लिये प्रेरित कर तदर्थ बलिदान करने के लिये प्रेरित किया।

यह मान्यता निराधार है कि राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को महाराणा प्रताप से कोई प्रेरणा नहीं मिली क्योंकि केसरीसिंह स्वयं क्रान्तिकारी

स्वतंत्रता सेनानी था और महाराणा प्रताप से पूर्णतया प्रभावित था। तभी तो उसने मेवाड़ के तत्कालीन स्वाभिमानी महाराणा फतहसिंह को 1903 के दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने से विमुख करने हेतु चेतावनी लिख भेजी थी-

पग-पग भय्या पहाड़,

धरा छोड़ राख्यो धरम।

इन्सू महाराणा मेवाड़,

हिरदे वसिया हिन्द रे॥

धण धलिया धमसांणा

(तोई) राणा सदा रहिया निडर।

(अब) पेखतां फुरमाण,

हलचल किम फतमल हुवै॥

यानी पांव पैदल पहाड़ों में विचरते रहे। धरती छोड़कर भी उन्होंने अपना धर्म रखा। इसी कारण महाराणा और मेवाड़ भारत देश के हृदय में बस गये। अत्यधिक घमासान युद्ध के समय भी राणा सदैव निडर रहे।

अंग्रेजी साम्राज्य से स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाले क्रांतिकारियों ने भी महाराणा प्रताप के जीवन तथा आदर्श से प्रेरणा ली। अतः अंग्रेजी शासन के पुलिस दल के साथ उड़ीसा में बूढ़ी बलम नदी के तट पर हुए यतीन मुकर्जी (बाघा जतीन) और उनके साथियों के संघर्ष वाले स्थल को बांग्ला के क्रांतिकारी कवि काजी नजरुल इस्लाम ने नव भारत का हल्दीघाटी कहा है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में-

उदयेर पथे कार वाणी।

भय नाइ ओ रे भय नाइ॥

निःशेषे प्राणि ये करिबे दान।

क्षय नाइ तार क्षय नाइ॥

यानी सूर्योदय के पूर्व पथ से यह वाणी सुनाई पड़ी- ओ ! कोई भय नहीं कोई भय नहीं है। सर्वस्व त्यागकर जो अपने प्राणों की भी आहुति दे देता है, उसका कोई क्षय नहीं होता अर्थात् वह अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

(लेखक श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ (उ.प्र.) के निदेशक हैं)



अंग्रेजी साम्राज्य से स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाले क्रांतिकारियों ने भी महाराणा प्रताप के जीवन तथा आदर्श से प्रेरणा ली। देश के विभिन्न राज्यों से निकले क्रांतिकारी महाराणा प्रताप की वीरता की गाथा गाते थे।



भामाशाह ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए वह सब किया जिसकी एक देशभक्त से अपेक्षा की जाती है। उन्होंने युद्ध काल में मेवाड़ के लिए अपार धनराशि उपलब्ध कराई, जिससे प्रताप ने सैन्य सामग्री जुटाकर अकबर का डटकर मुकाबला किया

■ के. छगनलाल बोहरा

भामाशाह

वह महान व्यक्ति थे जिनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व से यह शब्द स्वयं एक महान सम्मान का सूचक बन गया है। वर्तमान में 'भामाशाह सम्मान' ऐसा ही एक प्रतिष्ठित सम्मान है। कोई नाम, कोई व्यक्ति यूँ ही सम्मान का सूचक नहीं बन जाता। इसके पीछे होता है उस व्यक्ति का कोई महान त्याग, तपस्या, स्वामिभक्ति, देशभक्ति और प्रशासनिक कुशलता जैसे गुणों से युक्त तपोपूत जीवन।

उज्ज्वल वंश परंपरा

भगवान महावीर के उत्तरवर्ती एक आचार्य रत्नसूरी के उपदेशों से प्रभावित राजपूताना के अनेक क्षत्रियों ने मांस-मदिरा त्याग कर जैन मत स्वीकार कर लिया था जो ओसवाल कहलाए। इसी ओसवाल वंश में भामाशाह का जन्म 28 जून, 1548 को रणथम्भौर दुर्ग के किलेदार कावड़िया ओसवाल भारमल की पत्नी कर्पूरदेवी की कोख से हुआ। बचपन से ही उन्हें अपने माता-पिता से जैन संस्कारों के साथ-साथ शस्त्र-विद्या, घुड़सवारी, सैन्य संचालन और राज काज की शिक्षा प्राप्त हुई। वीरता, उदारता,



शेरदिल सेवाभावी

देशभक्ति और स्वामिभक्ति के गुण उनमें अपनी वंश परंपरा से प्राप्त थे जो जीवन-पर्यन्त उनके हर कार्य में परिलक्षित होते हैं।

दासीपुत्र बनवीर को हटाकर उदयसिंह जब मेवाड़ के महाराणा बने तब उन्होंने भारमल को परिवार सहित चित्तौड़ बुला कर मेवाड़ राज्य का कोषाधिकारी नियुक्त कर दिया और एक लाख की जागीर प्रदान कर अपनी सेवा में रख लिया। इन्हीं वर्षों में भामाशाह और उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र प्रताप की आपस में मित्रता हो गई, जो आजीवन रही। भारत की दो महान विभूतियों का यह

संयोग भविष्य की महान घटनाओं की पृष्ठभूमि थी। कुंवर प्रताप के व्यक्तित्व में बचपन से ही सहज मिलनसारिता के गुण विद्यमान थे। वे गुणग्राहक थे, कुंभलगढ़ के अपने प्रारंभिक जीवन तथा चित्तौड़ में किले के नीचे रहते हुए उन्होंने समाज के सभी वर्ग के लोगों से सहज, सरल, समरस संबंध विकसित किए। भील जनजाति के लोग उन्हें अपना आत्मीय मान "कीका" अर्थात् पुत्र के संबोधन से पुकारते थे। उस काल में उनका यही "राणा कीका" संबोधन जन-साधारण में अधिक प्रचलित रहा। युद्ध काल



महाराणा प्रताप को धनराशि सौंपते
हुए भामाशाह और उनके साथी



हल्दी घाटी में 18 जनवरी, 1576 को जब मानसिंह अपने फूफा अकबर की सेना लेकर प्रताप को पकड़ने आया था तब उनके साथ भामाशाह और उनके भाई ताराचंद चट्टान की तरह खड़े रहे। अकबर की सेना भाग खड़ी हुई थी।

के पिता कावड़िया भारमल ने चित्तौड़ में ही रहने का निर्णय कर युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। भामाशाह अपनी माता कर्पूरदेवी और छोटे भाई ताराचंद सहित युवा प्रताप के सहयोगी के रूप में महाराणा उदयसिंह के साथ उदयपुर के पहाड़ों में गोगुंदा आ गए। जहां फाल्गुन पूर्णिमा होली के दिन 1572 में उदयसिंह की मृत्यु के बाद प्रताप का राज्याभिषेक होने पर उनके प्रमुख सहयोगी सरदार के रूप में खजांची का कार्यभार संभाला। अपने वित्तीय कौशल से भामाशाह ने मेवाड़ की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। अकबर के आक्रमण के कारण चित्तौड़ में हुए तीसरे जौहर और महाराणा उदयसिंह के उदयपुर के पहाड़ों में आ जाने की वजह से मेवाड़ राज्य की जो आर्थिक वृद्धि बाधित हो गई थी, उसे प्रताप और भामाशाह की कुशल जोड़ी ने पुनः सुदृढ़ता प्रदान कर अकबर के निकट भविष्य में पुनः संभावित आक्रमण के लिए पर्याप्त तैयारी कर ली। हिंदू ही दूसरे हिंदू को दबा कर अकबर का गुलाम बनाने के प्रयास में लगा हुआ था। ऐसे विषम और विपरीत कालखंड में भामाशाह जैसे बुद्धिमान, कुशल प्रशासक, और वीर योद्धा ने अपना सभी कुछ देशहित में प्रताप पर न्योछावर कर विश्व के सामने एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। राजा भगवानदास, मानसिंह और मिर्जा खानखाना ने कई तरह के प्रलोभन दिए और कर्मचंद बछावत आदि-आदि के उदाहरण देकर उन्हें अकबर की सेवा में लाने का प्रयास किया, परंतु उनकी स्वामिभक्ति प्रताप और मेवाड़ के प्रति सदैव पर्वत की तरह अविचलित रही।

हल्दीघाटी युद्ध और भामाशाह

18 जून, 1576 को हल्दीघाटी में एक हिंदू क्षत्रिय मानसिंह अपनी और अपने फूफा

मलेच्छ अकबर की सारी सैनिक शक्ति लेकर अपने पिता और पूर्वजों के स्वामी रहे मेवाड़ राजवंश के उत्तराधिकारी हिंदू कुल गौरव महाराणा प्रताप को पकड़ कर अकबर का गुलाम बनाने आ खड़ा हुआ था। दूसरी ओर दोनों भाई, भामाशाह और ताराचंद प्रताप के सहयोगी और सजग प्रहरी की तरह महाराणा के पीछे खड़े थे। दोनों भाइयों ने जम कर तलवार के जौहर दिखाए। पहले ही हमले में मुगल सेना तितर-बितर होकर भेड़-बकरियों की तरह बनास नदी के पार भाग खड़ी हुई।

सर्वस्व समर्पण

महाराणा प्रताप के आदेश से पूरे युद्धकाल में मेवाड़ में खेती-बाड़ी, व्यापार आदि निषिद्ध था, ताकि मुगल सेना को किसी प्रकार से रसद प्राप्त न हो सके। ऐसी स्थिति में मेवाड़ के लिए धन जुटाने हेतु भामाशाह ने युक्ति निकाली और मालवा के मुगल इलाकों में धावे मारने निकल पड़े। उन्होंने रामपुरा, भाणपुरा, मंदसौर, मालपुरा आदि शाही थानों पर धावे मार कर वहां के जागीरदारों शाही थानेदारों से दंड वसूल कर भारी धनराशि एकत्र की। धनराशि लेकर वे चूलियां ग्राम में महाराणा की सेवा में उपस्थित हुए। स्वतंत्रता संग्राम को आगे बढ़ाने हेतु उन्होंने 25 लाख रुपए की धनराशि, 20,000 अश्वारिजों और अन्य युद्ध सामग्री महाराणा को भेंट की। प्रताप ने भावविभोर हो भामाशाह को गले लगा लिया और कहा, “स्वतंत्रता संग्राम की इस विकट घड़ी में आपका यह सर्वस्व समर्पण अद्भुत है। आपका यह त्याग और देशहित में सर्वस्व समर्पण विश्व कभी भूलेंगा नहीं। आपका यश अमर रहेगा।” भामाशाह के सर्वस्व समर्पण जैसा प्रेरक उदाहरण विश्व में अद्वितीय है। युगों तक नई पीढ़ियों को मार्ग

भामाशाह

में अकबर भी उन्हें इसी नाम से संबोधित करता था।

मेवाड़ की आर्थिक उन्नति

भामाशाह के रूप में प्रताप को बहुत ही योग्य, विश्वसनीय और कुशल प्रशासक सहयोगी के रूप में प्राप्त हुआ, जिन्होंने वंश परंपरा से प्रताप के दादा राणासांगा, पिता उदयसिंह और पुत्र अमरसिंह तक पूर्ण स्वामिभक्ति के साथ अपना सर्वस्व देश के लिए समर्पित कर दिया। 1567 में चित्तौड़ पर अकबर के आक्रमण के समय भामाशाह



तथ्य यह है कि...

18 जून, 1576 को हल्दी घाटी का युद्ध प्रारंभ हुआ और इसकी समाप्ति सितंबर में गोगुंदा में हुई। मानसिंह की अगुआई में उतरी मुगल सेना के 5,000 सैनिकों से प्रताप के 3,400 सैनिकों ने मुकाबला किया। यहां मुगल सेना पराजित हुई और अजमेर लौट गई। इस पराजय से अकबर आगबबूला हुआ। उसने मानसिंह और आसफ खां को दंडित करते हुए इन दोनों की ड्योली बंद कर दी और छह महीने तक उन्हें दरबार में आने से मना कर दिया। महाराणा प्रताप हल्दी घाटी युद्ध में विजयी रहे। उनकी विजय से पूरे भारत में अकबर की प्रतिष्ठा धूमिल हुई। हार से मन्नाए अकबर ने 13 अक्टूबर, 1576 को मेवाड़ पर हमला किया। दो महीने तक युद्ध चला, लेकिन वह प्रताप को परास्त नहीं कर पाया। आखिर में वह लौट गया, लेकिन सेकुलर इतिहासकार तथ्यों को झुठला कर अकबर को अपराजेय घोषित करते रहे।

दिखाने वाला है। प्रताप ने भामाशाह का बहुत सम्मान किया, उन्हें उसी वक्त मेवाड़ राज्य का प्रधान अर्थात् महामंत्री नियुक्त किया। प्रताप द्वारा अत्यंत सम्मानपूर्वक दिया गया यह पद वंश परंपरा से भामाशाह के उत्तराधिकारियों के ही पास रहा। इस संबंध में एक तत्कालीन कवि द्वारा कहा गया यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है-

भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द। मुगलां बाहर करण नूं मिलिया आय मरद्द॥

भामाशाह की आक्रामक नीति

भामाशाह द्वारा समर्पित धनराशि से सेना और सैन्य सामग्री एकत्रित कर अकबर को खदेड़ने की जो योजना प्रताप ने बनाई, उसका प्रारंभ दिवेर से किया गया। अब तक

जो रक्षात्मक युद्ध नीति थी, उसके स्थान पर आक्रामक नीति अपना कर अकबर पर आक्रमण किया गया जिससे दुश्मन स्वयं भयभीत हो भाग जाए। महाराणा प्रताप, कुंवर अमरसिंह और अनेक वीरों सहित भामाशाह और छोटे भाई ताराचंद स्वयं इस अभियान में शामिल हुए। कुंवर अमरसिंह के भाले के एक ही वार से अकबर का चाचा सुल्तान खां भाले सहित जमीन में गड़ गया। मुगल सेना के अनेक योद्धा प्रताप और भामाशाह के हाथों मारे गए। भामाशाह और ताराचंद ने युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाया। शाही सेना अपने सेनापतियों की ऐसी दुर्दशा देख सिर पर पांव रख भाग खड़ी हुई। इस युद्ध के समाचार मात्र से अनेक शाही थानों के थानेदार और सैनिक अपनी जान बचाकर अजमेर की तरफ भाग निकले। प्रताप का यह विजय अभियान भामाशाह के सहयोग से सारे मेवाड़ से मुगल सेना को खदेड़ कर चावण्ड में सुरक्षित राजधानी स्थापित करने



युद्ध काल में जन-साधारण द्वारा महाराणा प्रताप का तन, मन, धन से सहयोग किया गया था



तक जारी रहा। मेवाड़ में एक कहावत बहुत प्रचलित है जिसने इस बात को गलत साबित कर दिया कि राजधानी जीत लिए जाने मात्र से देश जीत लिया गया। युद्ध के समय महाराणा राजधानी छोड़कर सुरक्षित पहाड़ों में चले जाते और वहीं से संघर्ष जारी रखते। अतः कहावत हो गई, 'जठे राणाजी वठेई उदयपुर'

नवनिर्माण और भामाशाह

गहन वन और पर्वतों से घिरे शत्रु आक्रमणों से सुरक्षित चावण्ड में प्रताप ने अपनी राजधानी स्थापित की और मेवाड़ के प्रधान महामंत्री के रूप में भामाशाह ने आर्थिक सुदृढ़ता, नवनिर्माण, कृषि का विकास, खदानों आदि के कुशल प्रबंधन से राजस्व बढ़ाने की एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली प्रारंभ की। जावरमाता की खदानों से चांदी प्राप्त कर राजकोष को संपन्न किया गया। राजपरिवार के लिए महलों और कर्मचारियों के लिए भवनों के निर्माण सहित चावण्डा माता का मंदिर और जैन मंदिरों का निर्माण कराया गया। विद्वानों द्वारा उन्नत कृषि और जल प्रबंधन, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विद्याओं के विकास के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखवाए गए। कला कौशल की उन्नति के लिए कलाकारों को सम्मान और आश्रय दिया गया। चित्रकारी की चावण्ड शैली विकसित हुई।

भामाशाह के प्रधानमंत्रित्व काल में शांति और सुशासन से मेवाड़ की श्रीवृद्धि होने लगी। लेकिन इसी बीच एक दिन वह हुआ जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी। चावण्ड में ही 18 जनवरी, 1597 को महाराणा प्रताप ने इस दुनिया को छोड़ दिया। उनका जाना भामाशाह के लिए अत्यंत दुःखदायी था। उस विषम परिस्थिति में भी भामाशाह ने धैर्य नहीं खोया, उनकी स्वामिभक्ति अविचलित रही। प्रताप के बिछोह को भी उन्होंने अपनी ताकत बनाया। प्रताप के जीवन की साधना को आगे बढ़ाया।

प्रताप के अंतिम समय में उनके हृदय में था कि मेरी मृत्यु के बाद कहीं संघर्ष के कष्टों

महाराणा प्रताप के नहीं रहने के बाद भी भामाशाह मातृभूमि की रक्षा के लिए और अधिक सक्रिय रहे। उन्होंने प्रताप से वादा किया था कि वे जीते जी मेवाड़ को मुगलों के हाथ नहीं जाने देंगे। इस वादे को पूरा करने के लिए उन्होंने दिन-रात काम किया और मेवाड़ को स्वतंत्र रखा।



से घबरा कर मेरा उत्तराधिकारी अमरसिंह मुगलों के हाथ में मेवाड़ की स्वतंत्रता बेच न दे, तब भामाशाह और अन्य सरदारों ने उनके सम्मुख प्रतिज्ञा ली थी कि हम अपने जीतेजी कभी मेवाड़ को परतंत्र नहीं होने देंगे, हम आपके इस स्वतंत्रता संघर्ष को सदैव कायम रखेंगे, मेवाड़ को सुखी-समृद्ध और शक्तिशाली बनाएंगे। भामाशाह द्वारा दिलाए गए इस विश्वास के बाद ही प्रताप ने शांतिपूर्वक अपनी देह का त्याग किया। प्रताप से किए गए इस वादे को पूरा करने के लिए



दानवीर भामाशाह

वे पुनः कर्मपथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने लगे। वे मेवाड़ को चहुंओर से सुरक्षित, शक्तिशाली और समृद्ध बनाने के प्रयत्न में जुट गए। उदयपुर में महलों का निर्माण करवा कर राजपरिवार और महाराणा अमरसिंह पुनः उदयपुर आकर यहीं से राज्य का संचालन करने लगे। अमरसिंह ने उन्हें बचपन से अपने पिता के साथ मेवाड़ के लिए संघर्षरत और अपना सर्वस्व न्योछावर करते देखा था अतः उनके प्रति पूर्णः विश्वास और अपने पिता की ही तरह उनका सम्मान करते थे। भामाशाह भी अपने समस्त जीवन के अनुभव, बुद्धिबल और सामर्थ्य से मेवाड़ के चहुंमुखी विकास के लिए अपने शेष जीवन के अंतिम क्षण तक लगे रहे। उदयपुर के चारों ओर पर्वत घाटियों की किलाबंदी, किलों की मरम्मत और सुदृढ़ीकरण, खेती और सिंचाई की सुव्यवस्था, व्यापार वाणिज्य के लिए उचित वातावरण और विश्वास, वनों और खदानों का उचित प्रबंधन कर उन्होंने राजकोष के लिए राजस्व का समुचित प्रबंध किया। मेवाड़ राज्य के प्रधान का पद वंश परंपरा से भामाशाह के उत्तराधिकारियों के पास लंबे काल तक रहा।

11 जनवरी, 1600 को इस विलक्षण महापुरुष ने अपने कर्मशील जीवन की कीर्तिपताका को दानवीरों के श्रेष्ठ यश को आकाश में ऊंचा स्थापित कर अपनी इहलीला समाप्त कर ली। उदयपुर के आहाड़ स्थित राजपरिवार के समाधिस्थल महासतियां में उनकी समाधि (छतरी) आज भी भामाशाह के सम्मान की मौन साक्षी है।

(लेखक राजस्थान विद्यापीठ में अध्यापन एवं भारतीय इतिहास संकलन योजना के संगठन मंत्री हैं)



संग्राम सिंह उपाख्य महाराणा सांगा

मेवाड़

का इतिहास अगर देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि राणा सांगा जैसे अद्भुत व्यक्तित्व का धनी और कोई नहीं है। शायद ही कोई ऐसा वीर, बहादुर शासक हुआ, जिसके शरीर पर अस्सी घाव (एक हाथ, एक पांव, एक आंख न रहे और पूरा शरीर घावों से छलनी) हों, फिर भी उसने राजसिंहासन पर बैठने के बाद निरंतर युद्ध लड़ा हो। विश्व प्रसिद्ध खानवा का युद्ध इन्हीं युद्धों में से एक है। यह महाराणा सांगा ही थे, जिन्होंने उत्तर-पश्चिम से प्रवेश करती मुगल सेनाओं व दिल्ली के सुल्तानों से भारत को बचाने के लिए निरंतर संघर्ष किया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने ठीक ही लिखा है, “महाराणा सांगा (संग्राम सिंह) वीर, उदार, कृतज्ञ, बुद्धिमान और न्यायपरायण शासक थे। अपने शत्रु को कैद कर छोड़ देना और उसे उसका राज्य वापस कर देना सांगा जैसे उदार और वीर पुरुष का ही कार्य था।” ओझा आगे लिखते हैं कि वह एक सच्चे क्षत्रिय थे। उन्होंने कितने ही शहजादों, राजाओं आदि को अपनी शरण में आने पर अच्छे से रखा और आवश्यकता

मेवाड़ की धरोहर सांगा का तेज, प्रताप का शौर्य

मेवाड़ के गौरव को स्थापित करने के लिए राणा सांगा जैसा अदम्य शौर्य दिखाया था राणा प्रताप ने। उन्होंने अनगिनत कष्ट सहे पर कभी अपने ध्येय से डिगे नहीं। सच है कि मेवाड़ में महाराणा प्रताप जैसा वीर कोई नहीं था

■ तेज सिंह तरुण

पड़ने पर उनके लिए युद्ध भी किया। ऐसा कोई सोच सकता है? नहीं, कदापि नहीं, पर सांगा ऐसे ही थे। निश्चित ही उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता हम सभी भारतीयों के लिए गर्व की बात है।

यह सर्वविदित है कि संकटों में पले होने के कारण सांगा निडर, साहसी, वीर और एक अच्छे योद्धा बन गये थे। स्मरण रहे कि सांगा को महाराणा बनने के लिए अपने ही दो पराक्रमी भाइयों से घोर संघर्ष करना पड़ा था, लेकिन महाराणा बनने के उपरांत उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वे सबके थे, सब उनके थे। इस नीति ने सांगा को लोकप्रिय और शक्तिमान बना दिया, जिसके फलस्वरूप वे एक के बाद एक सफलता प्राप्त करते गये। कुछ ही दिनों में वे देश के सर्वशक्तिशाली हिन्दू राजा बन गए। मेवाड़ एक विशाल साम्राज्य का रूप ले चुका था। राजपूताने के लगभग सभी शासकों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी या मैत्रीपूर्ण संबंधों के कारण उनके ध्वज के नीचे थे। यह नजारा जब स्वयं बाबर ने भी खानवा के युद्ध में देखा तो वह भी हतप्रभ रह गया। इतिहासकार ओझा ने बहुत ठीक लिखा है कि सांगा भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू राजा थे, जिनके

अकबर के दरबारी लेखक अल बदायूनी, जो हल्दीघाटी युद्ध का प्रत्यक्षदर्शी था, दबी जुबान से स्वीकारते हुए लिखता है कि ‘वापसी के समय रास्ते में लोगों को यह समझाना कठिन हो गया कि युद्ध में किसकी विजय हुई।’



तथ्य यह है कि...

यदि प्रताप चाहते तो देश के अन्य शासकों की तरह ही राजमहलों का सुख-भोग सकते थे। यही नहीं, मेवाड़ के गौरवशाली अतीत एवं भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाकर अन्यो की तुलना में अधिक सम्मान के साथ जी सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इस सबके कारण ही वे आज देशभर के लिए प्रातः स्मरणीय हैं।

सेनापतित्व में सब राजपूत जातियां विदेशियों (तुर्कों) को भारत से निकालने के लिए एकजुट हुईं। स्वयं बाबर लिखता है, “राणा सांगा अपनी वीरता और तलवार के बल से बहुत बड़ा हो गया था।”

यही कारण है खानवा के युद्ध की पराजय भी उनके शौर्य और पराक्रम से भरे व्यक्तित्व की आभा को कम नहीं कर सकी। उनकी इसी महानता को ध्यान में रखते हुए स्वयं बाबर ने युद्ध से पूर्व कहा था कि राणा सांगा के विरुद्ध युद्ध करना सांप के बिल में हाथ डालने के बराबर है। बाबर की इस मनोदशा का ही परिणाम था कि वह पूरी तैयारी व सतर्कता के साथ युद्ध में उतरा और विजयी रहा। इसके विपरीत सांगा प्रारंभ से अब तक प्राप्त निरंतर सफलताओं के कारण निश्चित थे और बाबर को हल्के में लिया, जिसके कारण उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा था।

मेरा यहां यह मानना है कि सांगा ने हाथी की जगह घोड़े को काम में लिया होता तो बात कुछ और ही होती। इसके अलावा एक और बात थी, सांगा घायलावस्था में जब हाथी से गिरे, उस समय कोई तुरन्त सेना की बागडोर संभाल लेता तो भगदड़ न मचती और न ही पराजय मिलती। झाला अज्जा जैसे शूरवीर ने सांगा का दायित्व लिया किन्तु कुछ विलम्ब हो गया था और स्थितियां बदल गईं। पर राणा सांगा के अद्भुत व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं आई। वे भारतीय इतिहास के सितारे थे और आज भी हैं। वे सांगा ही थे, जिन्होंने मुगलों को भारतीय शक्ति एवं शौर्य से परिचित कराया। आगे चलकर अकबर को भी मेवाड़ के संघर्ष व स्वाभिमान के आगे झुकने को मजबूर होना पड़ा था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राणा सांगा इतिहास की एक अमर विभूति के रूप में जाने जाएंगे।

सांगा के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह एवं उनसे छोटे भाई विक्रमादित्य व उदयसिंह महाराणा बने पर मेवाड़ अपने उस गौरव को प्राप्त न कर सका। प्रताप के पिता उदय सिंह ने इस दृष्टि से कुछ प्रयास किए पर वह बात नहीं बन सकी जो सांगा के समय थी। राजस्थान के अन्यान्य क्षेत्र, जो पहले मेवाड़ के झंडे की नीचे थे, धीरे-धीरे बाबर, हुमायूं और अकबर के समर्थन में चले गये। इससे मेवाड़ के विस्तार एवं शक्ति पर तो प्रभाव पड़ा, लेकिन एक बात जो उल्लेखनीय है वह यह कि यहां के लोगों के मूल स्वभाव में कोई फर्क नहीं आया। महाराणा उदयसिंह के बाद जब प्रताप ने मुगलों से संघर्ष का बीड़ा उठाया तो सर्वत्र फिर वही बलिदानी हवा चल पड़ी।

कारण स्पष्ट था कि राजतिलक के बाद

प्रताप ने न दिन देखा न रात, अनवरत भ्रमण कर मेवाड़ की खोई शक्ति को पुनः संगठित करना शुरू कर दिया। मात्र चार वर्ष की अल्पावधि में अर्थात् 1576 में तो उन्होंने विश्व प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध में मुगल शक्ति को नाकों चने चबवा दिये। यह प्रथम अवसर था, जब प्रताप ने अपने शौर्य, पराक्रम और कौशल का युद्ध भूमि में सार्वजनिक प्रदर्शन किया था। नवीन स्रोतों के आधार पर यहां यह लिखना भी समीचीन होगा कि हल्दीघाटी के युद्ध में प्रारम्भ से अंत तक प्रताप का पलड़ा ही भारी रहा। उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोत इस कथन की पुष्टि करते हैं। स्वयं अकबर के दरबारी लेखक अल बदायूनी, जो हल्दीघाटी युद्ध का प्रत्यक्षदर्शी था, दबी जुबान से स्वीकारते हुए लिखता है कि ‘वापसी के समय रास्ते में लोगों को यह समझाना कठिन हो गया कि युद्ध में किसकी विजय हुई।’

यदि प्रताप चाहते तो देश के अन्य शासकों की तरह ही राजमहलों का सुख-भोग सकते थे। यही नहीं, मेवाड़ के गौरवशाली अतीत एवं भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाकर तो अन्यो की तुलना में अधिक सम्मान के साथ

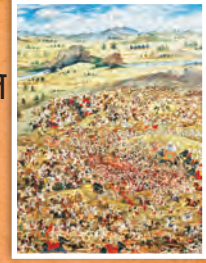
युद्ध मैदान में अपनी सेना के साथ महाराणा प्रताप





जी सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इस सबके कारण ही वे आज देशभर के लिए प्रातः स्मरणीय हैं। इसका मूल कारण था उनके भीतर बसा स्वातंत्र्य प्रेम, स्वाभिमान और शौर्य। इन्हीं गुणों ने प्रताप के यश को बढ़ाया। वे जब तक रहे एक स्वतंत्र शासक के रूप में रहे। अकबर की प्रलोभन आदि की राजनीति के सभी अस्त्र खाली गये। उनकी जनप्रियता के तो कहने ही क्या। स्वयं अकबर सहित उनके दरबारी भी प्रताप को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। कहते हैं कि प्रताप की मृत्यु का समाचार जब अकबर के पास पहुंचा तब वह उदास एवं स्तब्ध-सा हो गया। अकबर की उदासी एवं स्तब्धता को वहां उपस्थित कवि दूसरा आढ़ा ने जिन शब्दों में व्यक्त किया उसका भाव था, “हे राणा प्रताप सिंह। तेरी मृत्यु पर शाह अकबर

राजतिलक के बाद प्रताप ने न दिन देखा न रात, उन्होंने अनवरत भ्रमण कर मेवाड़ की खोई शक्ति को पुनः संगठित करना शुरू कर दिया। मात्र चार वर्ष की अल्पावधि में अर्थात् 1576 में तो उन्होंने विश्व प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध में मुगल शक्ति को नाकों चने चबवा दिये।



ने दांतों तले जीभ दबाई और आंसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी के आगे नहीं झुकाया।” अंत में यही कहा जा सकता है कि पूरे राष्ट्र में मेवाड़ ही एक ऐसा प्रदेश था, जिसने 1527 से 1707 तक मुगलों के खिलाफ अनवरत संघर्ष किया और अपनी गौरव गाथा में कई अनमोल पृष्ठ जोड़े।

महाराणा सांगा और प्रताप को कोई झुका न सका। सन्धि प्रस्ताव आए, पर स्वीकारे नहीं। दोनों ने महलों के सुख-भोग की जगह कंदराओं में भी आनन्द की अनुभूति की और स्वतंत्रता व स्वाभिमान की अलख जगाए रखी। यही कारण है कि प्रत्येक भारतवासी मेवाड़ को सदैव नमन करता है और करता रहेगा। (लेखक स्वतंत्र व्याख्याता हैं)

‘सरल’ धिराण सुविधा

» हिसाबोनी अंजटमांथी मुक्ति
» सरण दस्तावेज प्रक्रिया

11.50%

घरना घरनुं स्थान
करो साकार...

मुद्त २० वर्ष
प्रति लाभे हप्तो રૂ. ૮૫૨/-

પ્રધાનમંત્રી આવાસ યોજના અંતર્ગત
સભસીડીની સુવિધાનો પાલાલાભ
નજવા હમેથી લાંબી મુદતની લોન

ફક્ત
8.25%

નજીકની શાખાનો સંપર્ક કરો તુરંત... Mo. 94282 86268માં મિટ્ડ કોલ કરો અને બેન્કની યોજનાની માહિતી મેળવો

રાજકોટ નાગરિક સહકારી બેન્ક લિ.

(મલ્ટી સ્ટેટ શેડ્યુલ્ડ બેન્ક)

વિનોદ શર્મા

જનરલ મેનેજર - સી.ઈ.ઓ.

જીવણભાઈ પટેલ

વાઈસ ચેરમેન

નલિનભાઈ વસા

ચેરમેન

મુખ્ય અને રજી. ઓફિસ : ‘અરવિંદભાઈ મણીઆર નાગરિક સેવાલય’, ૧૫૦’ રીંગ રોડ, રૈયા સર્કલ પાસે, રાજકોટ - ૩૬૦૦૦૫,
ફોન : ૨૫૫૫૫૫૫ Email : secretary@rnsbindia.com Website : www.rnsbindia.com

નાના માણસોની મોટી બેન્ક



मेवाड़ी कूटनीति अकबर सेर तो प्रताप सवा सेर

प्रताप कूटनीति में इतने माहिर थे
कि उनके दांवपेच को बड़े-बड़े
कूटनीतिज्ञ भी नहीं समझ पाते थे।
अकबर एक चाल चलता था तो
प्रताप दस चालें चल कर उसे
परास्त कर देते थे

■ मनीष श्रीमाली

दो

राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने तथा युद्ध को टालने में जो प्रमुख तत्व सहायक होता है वह है राजनय या राजा की कूटनीति। कूटनीति दो राज्यों के संबंधों के निर्धारण एवं दिशा देने में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रताप एवं अकबर के बीच व्यवहार में कूटनीति का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मेवाड़ में प्रताप के राज्याभिषेक 1568 से 1572 तक के समय में मेवाड़-मुगल संबंधों में किसी प्रकार की हलचल नहीं दिखाई देती। प्रताप के राज्याभिषेक के साथ ही अकबर का ध्यान पुनः मेवाड़ की ओर गया। हल्दी घाटी से पूर्व का काल मेवाड़-मुगल संबंधों में कूटनीति की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण समय था। यहां प्रताप एक अद्भुत एवं अद्वितीय नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरे जो मेवाड़ के सबसे कठिन एवं



नाजुक समय में अपनी कूटनीतिक प्रतिभा के दम पर उसे संकट से उबारने में सफल हो सके।

अपने राज्याभिषेक के बाद के चार साल की कालावधि में प्रताप ने अकबर की कूटनीति का समुचित रूप से विश्लेषण कर लिया था। उन्हें बाद में

इसका पर्याप्त लाभ मिला। अकबर, जिसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था, निश्चित ही एक बेहद चतुर एवं कुटिल कूटनीतिज्ञ था। कुछ इतिहासकार अकबर की हिंदू राजाओं से वैवाहिक संबंध स्थापित करने की राजपूत नीति को मजहबी सहिष्णुता की नीति से जुड़ा मानते



अकबर के भेजे
शिष्टमंडल से
चर्चा करते प्रताप



हैं। वहीं आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, विंसेंट स्मिथ तथा इक्तिदार आलम खां अकबर की राजपूत नीति को तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की जरूरत मानते हैं। प्रताप ने कूटनीति से कार्य करते हुए सर्वप्रथम उन्हीं कारणों को अपनी कमजोरी बनने से रोका। यह कारण था राजपूताना के राज्यों का शक्ति संतुलन बिगड़ना। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में या दो राज्यों के बीच के संबंधों में शक्ति संतुलन का सिद्धांत बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

तत्कालीन राजपूताना के संबंध में शक्ति संतुलन के सिद्धांत को समझने के लिए हमें राजपूताना को दो भागों में विभाजित करना होगा—उत्तरी राजपूताना एवं दक्षिणी राजपूताना। अकबर की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण कई राज्यों का शक्ति संतुलन विकृत होने लगा था जिसमें से एक उत्तरी राजपूताना के राज्य

भी थे। अकबर की राजपूताना में सर्वप्रथम घुसपैठ भी इसके उत्तरी भाग में ही हुई थी, जहां 1562 से पूर्व तक उत्तरी राजपूताना के राज्य शक्ति संतुलन के सिद्धांत को बनाए रखने में सफल रहे थे। राजपूताना के राज्यों की राजनीति में पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन 1562 में दिखाई देता है जब अकबर द्वारा आमेर के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया जाता है। इस वैवाहिक संबंध की वजह से उत्तरी राजपूताना का शक्ति संतुलन बिगड़ चुका था। आमेर का मुगलों से गठबंधन होने की वजह से वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि अब उत्तरी राजपूताना में ऐसा कोई राज्य नहीं था जो उसका सामना कर सके। उत्तरी राजपूताना के दूसरे राज्य आपसी संघर्ष एवं आंतरिक कलह को दबाने में नाकाम रहने की वजह से कमजोर हो चुके थे।

वहीं मेवाड़ की स्थिति इसके विपरीत

दिखाई देती है। मेवाड़ में प्रताप जैसा कुशल व्यक्तित्व था जिसने इन कमजोरियों से मेवाड़ को उबारा। मेवाड़ की कूटनीति की सबसे महत्वपूर्ण जीत शक्ति संतुलन के सिद्धांत को बनाए रखना था। अकबर मेवाड़ के शक्ति संतुलन को नष्ट करके उसे कमजोर करने का प्रयास करता है। अतः उसने मेवाड़ के पड़ोसी राज्यों को उससे अलग-थलग करने का प्रयास किया इसके लिए वह हस्तक्षेप, युद्ध, संधियां, फूट डालने एवं मध्यवर्ती राज्यों को अपनी ओर मिलाने की कोशिश करता है। हर प्रकार की युक्ति अपनाने के बावजूद अकबर को मुंह की खानी पड़ती है। यहां प्रताप भी अकबर की कूटनीति का जवाब उसी की भाषा में देते हैं। प्रताप की सक्रियता की वजह से ही अकबर दक्षिणी राजपूताना में कोई भी राजनीतिक लाभ प्राप्त नहीं कर सका। प्रताप के कूटनीतिक दांवपेच की वजह से अकबर के विरुद्ध विरोध के कई केंद्र उभरे, जैसे- सिरौही, जालौर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, ईडर आदि। जहां अकबर मेवाड़ पर आक्रमण करता तो अन्य स्थानों पर विद्रोह प्रारंभ हो जाता जिससे स्वतः ही मेवाड़ का दबाव कम हो जाता। प्रताप की राजनयिक कुशलता की दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि ने मेवाड़ को

अकबर की कूटनीति का जवाब प्रताप ने उसी की भाषा में दिया। प्रताप की सक्रियता की वजह से अकबर दक्षिणी राजपूताना में कोई राजनीतिक लाभ प्राप्त नहीं कर सका। यही नहीं, उसके विरोध में कई केंद्र भी उभर आए। प्रताप ने कूटनीति में सदैव अकबर को परास्त किया।



तथ्य यह है कि...

अकबर की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण कई राज्यों का शक्ति संतुलन विकृत होने लगा था जिसमें उत्तरी राजपूताना के राज्य भी थे। अकबर की राजपूताना में सर्वप्रथम घुसपैठ इसके उत्तरी भाग में ही हुई थी। जहां 1562 से पूर्व तक उत्तरी राजपूताना के राज्य शक्ति संतुलन के सिद्धांत को बनाए रखने में सफल रहे थे, वहीं राजपूताना के राज्यों की राजनीति में पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन 1562 में दिखाई दिया जब अकबर ने आमेर के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इसकी वजह से उत्तरी राजपूताना का शक्ति संतुलन बिगड़ गया। आमेर का मुगलों से गठबंधन होने की वजह से अब वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि उत्तरी राजपूताना में ऐसा कोई राज्य नहीं था जो उसका सामना कर सके।



चेतक पर सवार होकर युद्ध के लिए जाते प्रताप, साथ में उनके सैनिक

किसी भी आंतरिक संघर्ष में नहीं उलझने दिया, सभी सामंतों को एकजुट रखा। इस वजह से अकबर दक्षिण राजपूताना में घुसपैठ नहीं कर सका। यह प्रताप की पहली और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कूटनीतिक विजय थी।

मेवाड़ एवं उसके आस-पास के क्षेत्र में अकबर कोई भी राजनीतिक लाभ प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका। अतः अकबर ने प्रताप का राज्याभिषेक होते ही पुनः कूटनीतिक प्रयास प्रारंभ किए। अकबर ने प्रताप को अपने अधीन करने हेतु शिष्टमंडल की नीति का प्रयोग किया। शिष्टमंडल की यह कूटनीति किसी प्रकार का सम्मानजनक समझौता करने की नहीं, अपितु प्रताप को अपने अधीन एक सामंत बनाने की नीति से प्रभावित प्रतीत होती है। इसके निम्न कारण दिखाई देते हैं- सर्वप्रथम, मालदेव ने अकबर से शांतिपूर्ण समझौते का प्रयास किया था, किंतु अकबर उसके प्रत्यक्ष रूप से दरबार में उपस्थित होकर अधीनता स्वीकार करने के अतिरिक्त किसी भी बात पर सहमत नहीं हुआ था। दूसरा, अकबर के मेवाड़ अभियान से पूर्व किसी प्रकार के राजनय संबंध का अभाव दिखाई देता है और वह बिना किसी ठोस कारण के हमला कर देता है। यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मेवाड़ के तीसरे शाके 1568 के चार वर्ष बाद अचानक ऐसा क्या हुआ कि अकबर ने मेवाड़ के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित करने हेतु प्रयास प्रारंभ कर दिए? यहां केवल नए शासक से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने की नीति नहीं अपितु इससे कहीं बढ़कर अपना वर्चस्व स्थापित करने की नीति थी।

यहां अकबर के लिए मेवाड़ का प्रश्न केवल भूमि विजय की नीति से बढ़कर था। भले ही प्रताप के पास 300 वर्ग मील का पर्वतीय क्षेत्र था पर मेवाड़ अपनी सामरिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। जहां एक ओर मेवाड़ दिल्ली-गुजरात के सामरिक एवं



व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। वहीं उसके जस्ते की खानें थीं तथा इसका उत्पादन महाराणा लाखा एवं उनसे पूर्व भी हो रहा था। मुगल उस धातु से अपरिचित थे अतः उसे पाने की चाह भी थी। अकबर की नीति यह थी कि पहले बड़े राज्य को पराजित करो, आस-पास के छोटे राज्य स्वयंमेव आत्मसमर्पण कर देंगे। अतः मेवाड़ अधीनता स्वीकार करता तो दक्षिण राजपूताना का शक्ति संतुलन स्वतः ही नष्ट हो जाता। अंतिम किंतु सबसे प्रभावी कारण नैतिक दृष्टि से मेवाड़ का स्वतंत्रता संघर्ष अन्य राज्यों के लिए भी विद्रोह की प्रेरणा का स्रोत बन सकता था। ऐसा अकबर के जीवन काल में ही दिखाई देता है कि हल्दी घाटी मुगल प्रतिरोध का प्रतीक बन गई थी।

मेवाड़ की अधीनता अकबर के लिए अत्यावश्यक थी। अतः अपने शिष्टमंडल की कूटनीति के रूप में प्रताप के पास कुल चार दूत भेजे थे। अकबर का पहला शिष्टमंडल प्रताप के राज्याभिषेक के सात माह बाद आता है तथा इसके बाद जो भी दूत आते हैं, उनके आगमन एवं अकबर के जीवन के घटनाक्रम को देखें तो अकबर की अचानक मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने की नीति की वास्तविकता उजागर होती है। अकबर के दूत मंडल भेजने की नीति विशुद्ध रूप से गुजरात अभियान से प्रभावित थी, न कि मित्रता स्थापित करने के भावावेग से। अकबर के गुजरात अभियान पर निकलते ही उसे मेवाड़ की सामरिक स्थिति का ज्ञान हो गया था। जैसे-जैसे अकबर आगे बढ़ा, उसे मेवाड़ के आस-पास के क्षेत्रों पर प्रताप के प्रभाव तथा मेवाड़ द्वारा स्थापित शक्ति संतुलन का पूर्णतः भान हो गया। अकबर के समस्त शिष्टमंडल गुजरात अभियान के दौरान ही भेजे गए थे। अकबर की शिष्टमंडल कूटनीति में भी दो पैतरे दिखाई देते हैं। पहला, मेवाड़ को अपने स्वजातीय से ही विलग करने का प्रयास तथा दूसरा, मेवाड़ को घेरने की

नीति। प्रताप के समक्ष पहले शिष्टमंडल के रूप में जलाल खां कोरची आता है। तत्पश्चात् मानसिंह, भगवंतदास एवं टोडरमल आते हैं। अकबर जानता था कि या तो मेवाड़ अधीनता स्वीकार करेगा या फिर विरोध करेगा। इन दोनों ही स्थितियों में अकबर को लाभ होगा। मेवाड़ अगर

विरोध करेगा तो वह अपने स्वजातीय को ही अपना शत्रु बना लेगा जिससे राजपूताना में उसकी स्थिति कमजोर हो जाएगी। सर्वप्रथम, प्रताप ने इस नाजुक स्थिति को बेहद कुशलता एवं चतुराई से संभाला। प्रताप ने सभी शिष्टमंडलों का अच्छे नीतिज्ञ शासक के समान स्वागत

आदिजाति विकास विभाग, गुजरात सरकार, गांधीनगर

वनबंधु कल्याण योजना

गुजरात में उमरगाम से लेकर अम्बाजी तक पूर्व पट्टी के आदिवासी विस्तार में कुल 49 तालुकाओं का समावेश होता है जिसमें अनुसूचित जनजाति की वस्ती 89.17 लाख है जिसके ऊपर गुजरात के मुख्यमंत्री ने आदिजाति के सर्वांगी कल्याण कार्यक्रम अंतर्गत द्वितीय चरण के अंतर्गत निम्नलिखित मुद्दों पर कार्य 40000 करोड़ रु. के प्रस्तावित प्रावधान द्वारा किया जा रहा है। सर्वांगी विकास को समर्पित मुख्यमंत्रीश्री के 10 मुद्दों का कार्यक्रम (वनबंधु कल्याण योजना):-



श्री विजय रुपाणी
मुख्यमंत्री, गुजरात

- | | |
|--|--------------------------------|
| ■ पांच लाख कुटुम्बों के लिए रोजगार लक्षी कार्यक्रम | ■ सभी के लिये घर |
| ■ शिक्षण की गुणवत्ता और उच्च अभ्यास पर भार | ■ पीने के लिये पानी |
| ■ आदिजाति विस्तार का आर्थिक विकास तीव्रता से हो | ■ सिंचाई |
| ■ सभी के लिये आरोग्य | ■ बारमासी रास्ते |
| | ■ बिजली की सार्वत्रिक उपलब्धता |
| | ■ शहरी विकास |

गुजरात के बहुलक आदिजाति विस्तार 14 प्रायोजन विस्तार में विस्तारित है

- | | |
|----------------------------|----------------------|
| 1. पालनपुर-बनासकांठा | 8. मांडव-सुरत |
| 2. खेडब्रह्मा-साबरकांठा | 9. सोनगढ़-तापी |
| 3. दाहोद-दाहोद | 10. वांसदा-नवसारी |
| 4. गोधरा-पंचमहल | 11. वलसाड-वलसाड |
| 5. छोटा उदयपुर-छोटा उदयपुर | 12. आहवा-डांग |
| 6. राजपीपला-नर्मदा | 13. मोडासा-अरवल्ली |
| 7. भरूच -भरूच | 14. लुणावाडा-महिसागर |

शुभेच्छक, आदिजाति विकास विभाग



कूटनीतिज्ञ प्रताप

महाराणा प्रताप कूटनीति में अद्वितीय थे। वे इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि वे कभी अकबर के साथ सम्मानजनक समझौता नहीं कर सकते। इसका कारण मालदेव जैसे उदाहरण थे, तो उनका अपने स्वाभिमान से प्रेरित व्यक्तित्व एवं अपने पूर्वजों की मर्यादा भी थी। अतः महाराणा ने कभी भी ऐसी गलती नहीं की जिससे अकबर को किसी भी प्रकार राजनीतिक लाभ प्राप्त हो सके। प्रताप ने कभी भी अपनी सुरक्षा नीति, अपने मनोभाव तथा विचार दूत पर जाहिर नहीं होने दिए भले ही उनके सजातीय क्यों न आए हों। प्रताप एक व्यवहारिक कूटनीतिज्ञ थे तथा प्राचीन राजनीतिक सिद्धांतों से परिचित थे। अकबर ने दूसरे दूतमंडल के रूप में कुंवर मानसिंह को भेजा। यहां अकबर ने सजातीय को दूत के रूप में भेज कर दोहरा कूटनीतिक दांवपेच चला था। मानसिंह को भेजने का एक कारण यह था कि मेवाड़, जो कि अपनी वंश परंपरा पर अभिमान करता था, उसे मुगलों की अधीनता में लाने हेतु राजपूत से बेहतर कोई अन्य नहीं हो सकता था। दूसरा, अकबर की अधीनता में रह चुका राजपूत शासक ही मुगलों की अधीनता में आने का नफा-नुकसान ज्यादा अच्छे से बता सकता था। यहां अकबर को दोहरा फायदा इस बात से था कि अगर

किसी सम्मानजनक समझौते तक न पहुंचा जा सके तो राजपूताना के दो राजपूत वंश में विवाद हो जाए जो कि अकबर के लिए लाभदायक था। यहां अकबर नस्लीय कूटनीति का प्रयोग कर रहा था। उसके कूटनीतिक सिद्धांत बौद्धिक विचाराधारा से प्रभावित थे। इस विचाराधारा की मुख्य विशेषता यह है कि यह शक्ति की राजनीति को महत्व देती है। इनके लिए संधि-वार्ता सैनिक अभियान का ही अंग मात्र है। प्रताप एवं अकबर के कूटनीति दांवपेच अपने समय के दो बेहद कुशल शासकों के संबंधों को निरूपित करते हैं। प्रताप ने विश्व को कूटनीति के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रदान किए जिनकी आज उसे सबसे ज्यादा जरूरत है। आज वह भले ही भारत हो या विश्व का कोई अन्य देश, पड़ोसी राज्यों के साथ संबंधों को लेकर उनमें खटास दिखाई देती है। वहीं प्रताप ने विश्व को बताया कि किस प्रकार पड़ोसी राज्यों से ऐसे मजबूत संबंधों का निर्माण करें कि जब कभी कोई तीसरी शक्ति आप पर आक्रमण करे तो पड़ोसी राज्य आपके साथ संघर्ष में सहयोग करें न कि बाधा बन के खड़े हो जाएं। प्रताप ने बताया कि पड़ोसी राज्य सदैव आपका शत्रु नहीं होता। यह विश्व के लिए वर्तमान में सबसे आवश्यक एवं प्रासंगिक विचार है।

किया और उन्हें पूर्ण आदर-सम्मान प्रदान किया। टोडरमल प्रताप की आवभगत से इतना प्रभावित हुआ कि उसने दिल्ली जाकर प्रताप का सकारात्मक पक्ष रखा। वहीं अकबर की प्रताप को घेरने की नीति के तहत मानसिंह एवं भगवंतदास, दोनों

ही सेना के साथ मेवाड़ आए। इसी कारण राजेंद्र शंकर भट्ट ने मानसिंह के दूत के रूप में मेवाड़ आने को भी उसके पहले अभियान की संज्ञा दी है। प्रताप शासक के साथ-साथ एक कुशल राजनय की भूमिका निभा रहे थे। दूत मंडलों का

ससैन्य मेवाड़ में प्रवेश करना, एक प्रकार से आक्रमण करने जैसा ही कृत्य था किंतु प्रताप ने युद्ध टालने की नीति को ध्यान में रखते हुए, उसको आक्रमण नहीं माना बल्कि एक अतिथि के रूप में उनका स्वागत किया। इस प्रकार प्रताप ने बड़े ही धैर्य, सहिष्णुता और चतुराई से सारे मामले को संभाला। प्रताप के समक्ष दूसरी बड़ी चुनौती अकबर के साम-दाम-दंड-भेद से पूरित प्रस्तावों का इस प्रकार जवाब देना था कि यथासंभव युद्ध टालने की नीति कायम रह सके।

धर्मशास्त्रों एवं राजनीतिक शास्त्र का समुचित अध्ययन करने से प्रताप राजनय के कार्यों से भली-भांति परिचित थे। वे जानते थे कि राजनय का प्राथमिक और एकमात्र कर्तव्य अपने देश की सुरक्षा और राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना है तथा जहां तक संभव हो सके, इस उद्देश्य की प्राप्ति शांतिपूर्ण तरीके से करना है। अतः उन्होंने बड़े धैर्य से अकबर के प्रस्तावों को सुना, बगैर विरोध प्रदर्शित किये जहां अपने गौरवशाली वंश की मर्यादा का भान कराया तो वहीं दिलासा देकर दूतमंडलों को आशापूर्ण किंतु अनिश्चित मानसिक स्थिति में विदा भी किया। यह कौशल प्रताप की अद्वितीय कूटनीतिज्ञता के गुण से परिचित कराता है। प्रताप प्राचीन राजनीतिक विचारों एवं सिद्धांतों से पूर्णतया परिचित तो थे, साथ ही यथार्थवादी भी थे।

अकबर अपने दरबार के सबसे योग्य व्यक्तियों को भेजने के बाद भी प्रताप को अपने अधीन करने में सफल नहीं हो सका। हम शिष्टमंडल की भूमिका पर गौर करें तो पता चलता है कि यहां दूत की भूमिका केवल एक राजा के संदेश को दूसरे राजा तक पहुंचाने की नहीं थी, बल्कि वह एक छद्म रूप में राजा का गुप्तचर भी था। इस दृष्टि से प्रताप बहुत ही परिपक्व साबित हुए थे।

(लेखक मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में इतिहास विभाग में वरिष्ठ शोधार्थी हैं)



लेखनी से उकेरा महाराणा का 'प्रताप'

महाराणा प्रताप की महानता, उच्चता और आदर्श को लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से देश-समाज के सामने रखने का काम किया है। यहां उनमें से कुछ का परिचय देने का प्रयास किया गया है

■ डॉ. जे.के. ओझा

महाप्रतापी

प्रताप विश्व पटल भारतीय जनमानस के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनकी महानता,

उच्चता, आदर्श का स्तवन साहित्यकारों, इतिहासकारों, कलाकारों, दार्शनिकों ने बड़ी अच्छी तरह से किया है। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक भाषा में, प्रत्येक काल में प्रताप की वीरता पर लिखने वालों ने उनका मान बढ़ाया है। बंगाल, मध्य प्रदेश,

कर्नाटक, महाराष्ट्र सभी राज्यों के साहित्यकारों एवं इतिहासकारों ने 'प्रताप' पर अपनी लेखनी चलाई है। कविराज श्यामलदास ने अपने ग्रन्थ 'वीर विनोद' में प्रताप पर विस्तृत लेखन कार्य कर, भावी पीढ़ी को इस ओर बढ़ने व लिखने को प्रेरित किया। कविताओं, डिंगल, पिंगल गीतों, नाटकों, शोध, निबंधों अथवा राजस्थान पर मध्यकालीन भारत पर लिखी पुस्तकों में प्रताप को लेकर काफी लेखन कार्य किया गया है। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने राजपूताने का इतिहास एवं उदयपुर राज्य का इतिहास लिखा। उसके प्रथम भाग में से प्रताप संबंधी लेखन को लेकर 1984 में 'वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप' (सचित्र) प्रकाशित कराई।

यह पुस्तक वैदिक यंत्रालय, अजमेर से प्रकाशित हुई। इसके अलावा 1987 में कविराव मोहन ने 'प्रताप-यश-चंद्रिका' पुस्तक लिखी जो श्री भूपाल मुद्रण-यंत्रालय, उदयपुर से मुद्रित हुई। 1983 में निहाल चंद एण्ड कंपनी की ओर से 'भारत के महापुरुष' पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसके संपादक पं.





रमाशंकर त्रिपाठी हैं। यह पुस्तक 'प्रताप' के जीवन को सामने रखती है। लोकायत शोध संस्थान, जोधपुर से राजेन्द्र बोड़ा की 'महाराणा प्रताप' का प्रकाशन हुआ। 1976 में राजेन्द्र शंकर भट्ट की पुस्तक मेवाड़ के महाराणा और अकबर स्फटिक संस्थान, जयपुर से प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने स्रोतों के आधार पर कई नवीन तथ्य उजागर किये। डॉ. देवीलाल पालीवाल ने 'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ' नामक पुस्तक में विभिन्न हस्तियों से प्रताप संबंधी विविध विषयों पर आलेख एवं दुर्लभ सामग्री को 1969 में प्रकाशित कर, एक स्तुत्य कार्य किया। यह ग्रन्थ साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित हुआ। इसी भांति डॉ. देवीलाल पालीवाल ने प्राचीन डिंगल काव्य में 'महाराणा प्रताप' पुस्तक लिखी जो अरुणिमा प्रकाशन, उदयपुर से 1966 में प्रकाशित हुई। बाबू गंगा प्रसाद गुप्त द्वारा रचित 'महाराणा प्रताप' पुस्तक काशी से 1913 में प्रकाशित हुई। प्रो. एस. आर. शर्मा ने 'महाराणा प्रताप' पुस्तक अंग्रेजी में लिखी जो 1954 में वी. वी. आर. इंस्टीट्यूट से प्रकाशित हुई।

डॉ. जी.एन.शर्मा एवं एम.एन.माथुर ने 'महाराणा प्रताप एण्ड हिज टाइम्स' नामक पुस्तक में नामचीन इतिहासकारों के शोध निबंधों को संपादित कर, महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर से 1988 में प्रकाशित किया। 1980 में साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर से डॉ. देवीलाल पालीवाल द्वारा संपादित 'हल्दीघाटी युद्ध' पुस्तक प्रकाशित हुई। बलवन्त सिंह रचित 'प्रातः स्मरणीय प्रताप' पुस्तक महाराणा प्रताप की 434वीं जयन्ती पर प्रकाशित हुई जिसके प्रकाशक क्रांति कार्यालय, रेन बसेरा, उदयपुर हैं। इसी तरह 1972 में प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा डॉ. रघुवीर सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'महाराणा

डॉ. जी.एन.शर्मा एवं एम.एन.माथुर ने 'महाराणा प्रताप एण्ड हिज टाइम्स' नामक पुस्तक में प्रसिद्ध इतिहासकारों के शोध निबंधों को संपादित किया है, जो महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर से 1988 में प्रकाशित हुई।

प्रताप' प्रकाशित हुई। बलवन्तसिंह महेता व जोध सिंह महेता द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखित 'प्रताप, द पेट्रीअट' 1969 में द प्रताप इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, भूपाल नोबल्स कॉलेज, उदयपुर से छपी। 1983 में 'महाराणा प्रताप: जीवनी, महत्व व देन' पुस्तक कु. डॉ. रघुवीर सिंह द्वारा लिखित पंचशील प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित हुई।

डॉ. देव कोठारी एवं डॉ. ललित पाण्डेय द्वारा संपादित 'महाराणा प्रताप और उनका युग' पुस्तक 1991 में साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा प्रकाशित की गई। डॉ. देवीलाल पालीवाल की 'महाराणा प्रताप महान' पुस्तक 1996 में राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर से प्रकाशित हुई। डॉ. पालीवाल की ही एक अन्य पुस्तक 'महाराणा प्रताप महान जीवन वृत्त और कृतित्व' पुस्तक राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर से 1998 ई. में प्रकाशित हुई।

देवी सिंह मंडावा ने 'स्वतंत्रता के पुजारी महाराणा प्रताप' पुस्तक की रचना की जो 2012 में अरिहन्त प्रकाशन, जोधपुर से तो डॉ. पूरन सहगल ने 'लोक साहित्य के महानायक महाराणा प्रताप' 2012 में मध्य भारतीय इतिहास अनुसंधान प्रतिष्ठान, ग्वालियर से प्रकाशित हुई। डॉ. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना रचित 'अपराजित महाराणा प्रताप' 2008 में ज्योति किरण रामश्री चेरिटेबल ट्रस्ट हिरण मगरी, उदयपुर से प्रकाशित है। डॉ. हुकमसिंह भाटी द्वारा संपादित 'युग पुरुष महाराणा प्रताप' पुस्तक प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल्स संस्थान उदयपुर से 1991 में छपी। 2002 में महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर से

'महाराणा प्रताप से संबंधित स्रोत एवं स्थान' पुस्तक के सम्पादक सज्जनसिंह राणावत, प्रो. के.एस. गुप्ता, स्वरूप सिंह चूंडावत हैं। यहीं से सज्जन सिंह राणावत, प्रो. के.एस. गुप्ता द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'बहुआयामी प्रताप' 2010 में प्रकाशित हुआ। ओमप्रकाश की पुस्तिका 'प्रताप गाथा' 2011 में वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप समिति, उदयपुर से प्रकाशित हुई। एम. एन. माथुर, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, सज्जन सिंह राणावत द्वारा संपादित 'महाराणा प्रताप के प्रमुख सहयोगी' का प्रकाशन 1997 में राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर से हुआ। चन्दन सिंह की 'छापली और महाराणा प्रताप' 2007 में उदयपुर से प्रकाशित हुई। प्रो. के.एस. गुप्ता की लिखी पुस्तक 'महाराणा प्रताप कुम्भलगढ़ से चावण्ड' 2008 में महाराणा प्रताप स्मारक समिति, चावण्ड से प्रकाशित हुई। यह पुस्तक मौलिक स्रोतों के आधार पर नवीन तथ्यों से भरपूर है और प्रताप के बारे में सोचने के लिए एक नई दृष्टि प्रदान करती है।

इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए डॉ. ईश्वर सिंह राणावत ने लिखा, "प्रो. के. एस. गुप्ता ने प्रताप के जन्म स्थान कुम्भलगढ़ से मृत्यु स्थल चावण्ड तक की विभिन्न घटनाओं को आठ अध्यायों में यथा पूर्व पीठिका, नीति निर्धारण काल (1572-1576), संघर्ष का सूत्रपात, काल, प्रताप की राजधानी चावण्ड, भ्रान्तियां एवं वास्तविकता, सृजनात्मक कार्य को समेटा है। इसमें अनेक अनछुए पहलुओं पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। राजनीतिक घटनाओं के साथ ही इसमें प्रताप के सृजनात्मक कार्यों एवं भ्रान्तियों को कसौटी पर रख वास्तविकता



तथ्य यह है कि...

अनेक पुस्तकों में प्रताप संबंधी भ्रान्तियों पर भी पर्याप्त प्रकाश डालकर उनका निवारण करने का प्रयास किया गया है। इनमें भगवन्त दास के साथ अमर सिंह को मुगल दरबार में भेजने की घटना को कपोल कल्पित सिद्ध किया गया है। महाराणा मुगल संघर्ष में कभी अकेले नहीं रहे। उन्हें राजस्थान के अनेक राज्यों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग मिलता रहा। चक्रपाणि के 'मुहर्तमाला' ग्रन्थ से स्पष्ट है कि अनेक शासक प्रताप के प्रति समर्पित थे।

बताने का सराहनीय प्रयास हुआ है। इतना ही नहीं 'प्रताप एवं अकबर की सोच पर नए तथ्य उजागर किए हैं। प्रताप से संबंधित अनुसंधान कार्य इस पुस्तक का आधार स्तम्भ है।'

प्रताप ने सेनानायक के रूप में डूंगरपुर

एवं गोडवाड़ अभियानों में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी थी। प्रो. गुप्ता की यह मान्यता उपयुक्त प्रतीत होती है कि इसी कारण जब महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद जगमाल, जो मेवाड़ की गद्दी पर बैठ गया था, को हटा कर प्रताप को राज

गद्दी पर बिठाने में सामन्तों को कोई कठिनाई नहीं आई। इस प्रक्रिया को लेखक ने एक परम्परा का निर्वाह एवं अन्याय के प्रतिकार से भी अधिक उसके प्रति अटूट विश्वास को माना है। प्रो. गुप्ता यह सिद्ध करने में सफल हुए हैं कि संवेदनशील प्रताप ने भी इस घटना को एक संदेश के रूप में लिया। अगर उसे विश्वास पर खरा उतरना था, तो उसके लिए उसे परम्परा का पालन करते हुए स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा करनी थी, जनता को खोया हुआ विश्वास उसे पुनः दिलाना था। इस ग्रन्थ की एक विशेषता प्रताप की अकबर के विरुद्ध कूटनीतिक सफलता को दर्शाना है।



मेवाड़ के सामंत जगमाल को राज गद्दी से हटाते हुए मेवाड़ के सैनिक



अकबर ने प्रताप के चरित्र को समझने में भूल की, क्योंकि समस्याओं से कतराना प्रताप के स्वभाव में न था। वे तो उसका सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। समस्याएं उन्हें चिंतित करने की अपेक्षा दृढ़ता प्रदान करती थीं।



भयभीत थे। फिर भी प्रताप ने अपनी नीति का एक प्रमुख सूत्र विभिन्न शक्तियों से संबंध स्थापित करने का रखा।

पुस्तक में प्रताप संबंधी भ्रान्तियों पर भी पर्याप्त प्रकाश डालकर उनका निवारण करने का प्रयास किया गया है। लेखक ने भगवन्त दास के साथ अमर सिंह को

अकबर की मान्यता थी कि मेवाड़ की अस्त-व्यस्त स्थिति के उपरान्त भी प्रताप से युद्ध करना आसान नहीं है। अतः उसने मेवाड़ को घेरने की नीति अपनाई। लेकिन महाराणा ने अकबर के भेजे राजपूत दूतों को इस बात का विश्वास दिला दिया कि जब तक वह स्वतंत्र हैं, मुगल दरबार में राजपूतों के साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जायेगा और जिस दिन वह अधीनता स्वीकार कर लेंगे, मुगल दरबार में राजपूतों की स्थिति दयनीय हो जायेगी। बाद की घटनाओं को देखें तो यह निश्चित हो जाता है कि इन शिष्टमंडलों के नेताओं में यह बात घर कर गई और इससे वे प्रभावित हुए। इसलिए अनेक बार प्रताप के प्रति उनके रुख पर सवालिया निशान भी लगे। लेखक का यह भी मत है कि अकबर ने प्रताप के चरित्र को समझने में भूल की, क्योंकि समस्याओं से कतराना प्रताप के स्वभाव में नहीं था। वे तो उसका सामना करने के लिए तत्पर रहते थे। समस्याएं उन्हें चिंतित करने की अपेक्षा दृढ़ता प्रदान करती थीं। प्रताप ने ऐतिहासिक घटनाओं का मनन किया। इस प्रकार प्रो. के. एस. गुप्ता ने अपनी पुस्तक में प्रताप की परिवर्तन की स्थिति का सही आकलन किया है। पुस्तक में विस्तार से प्रताप की युद्ध नीति के बारे में बताया गया है। पुस्तक में वर्णित है कि कैसे धन-बल और शस्त्र बल से अकबर की सेना का मुकाबला करने हेतु जन सहयोग के साथ ही प्रताप ने सामरिक नीति में परिवर्तन कर छापामार युद्ध का श्रीगणेश किया। इसके साथ ही छोटे राज्य मुगल शक्ति से



Estd. 1949

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

(A' Grade Accredited by NAAC)



A CONTINUING JOURNEY OF ACADEMIC EXCELLENCE

India's Internationally renowned The Maharaja Sayajirao University of Baroda (1949) has blossomed from the Baroda College (1881) which is one of the oldest Centres of learning in Western India. The M.S. University of Baroda is the only State University with a residential, unitary character having English as sole medium of instruction with more than 1250 well qualified faculty members supported with 1500 Administrative staff to facilitate the learning of more than 36000 students on a vibrant, cosmopolitan, wi-fi enabled campus.

Significant Salient Features:

- Illustrious Alumni and Scholars such as Bharat Ratna Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar, Nobel Laureate Dr. Venkatraman Ramakrishnan, Shri Aurobindo, Bharat Ratna Acharya Vinoba Bhave, Gyanpith Awardee Shri Rajendra Shah, Reserve Bank Governor Dr. I.G. Patel, Lord Bhikhu Parekh and Prof. K.G. Subramanyan.
- The University comprises of 14 Faculties viz: Arts; Commerce; Education & Psychology; Family & Community Sciences; Fine Arts; Journalism & Communication; Law; Management Studies; Medicine; Performing Arts; Pharmacy; Science; Social Work; Technology & Engineering.
- 3 Constituent Colleges viz: M.K. Amin Arts & Science College, College of Commerce; Polytechnic and Baroda Sanskrit Mahavidyalaya.
- 111 Teaching Departments, 8 Institutions, and 13 Centers of Specialized Studies.
- Innovative Science and Technology Programmes: Cell and Molecular Biology, Nanotechnology, Petroleum Geology, Medical Biotechnology, Bioinformatics, Information Technology, Disaster Management, Embedded Systems, Packaging Engineering, Welding Technology.
- Cutting Edge Research Centres: Centre for Biotechnology, Genome Research Centre, Centre for Molecular Genetics, Cluster Innovation Centre, Centre for Excellence in Polymer, Siemens Centre of Excellence for Industry Automation.
- Opportunity to engage in wide-ranging extension activities and internships in National organizations through the Faculties of Social Work, Journalism and Communication, Family and Community Sciences, Science, Pharmacy and Technology & Engineering.
- Offers wide range of Academic Programmes from early childhood to Under-Graduate and Post-Graduate levels including Ph.D.
- Exchange program with European Union.
- Offers Short Term Courses on Life, Skill Development, offered by the Centre for Life Long Learning & Extension; Institute of Leadership and Governance.
- The prestigious Smt. Hansa Mehta Library offers access to National and International Database of References and Reading Material with a big centrally Air Conditioned Reading Room to accommodate close to 1600 students at a time.
- It consists of 9 Campuses with 16 Hostels (Boys & Girls) to accommodate over 4500 students.

Online Applications for Admissions open in various Academic Programs being offered by the Maharaja Sayajirao University of Baroda.

Visit University Website to Access and Download Admission Prospectus and Admission Manual and Faculty Prospectus etc. www.msubaroda.ac.in, <http://msub.digitaluniversity.ac>
Helpline: 91-265-2795555 (10.30 a.m. to 5.30 p.m. on working days)



मुगल दरबार में भेजने की घटना को कपोल कल्पित सिद्ध किया है। इसी प्रकार उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि महाराणा मुगलों से संघर्ष में कभी अकेले नहीं रहे। उन्हें राजस्थान के अनेक राज्यों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग मिलता रहा। चक्रपाणि के मुहर्तमाला ग्रन्थ से स्पष्ट है कि अनेक शासक प्रताप के प्रति समर्पित थे। अतः डॉ. गुप्ता ने इस बात को केवल भ्रान्ति माना कि संघर्ष में प्रताप अकेले थे प्रताप ने तथ्यों के आधार पर राज्यविहीन मुगल विरोधी शक्तियों जैसे राव चन्द्रसेन मारवाड़, बून्दी का दूदा, मानसिंह सोनगरा व भाण सोनगरा, ग्वालियर के रामशाह तंवर से सहयोग प्राप्त किया। राजस्थानी शासक जैसे- बांसवाड़ा, देवलिया (प्रतापगढ़), सिरौही, ईडर, जालौर आदि। कई इतिहासकार प्रताप की अकबर विरोधी नीति को राष्ट्रीय एकता में बाधक मानते हैं। इस पर भी इस पुस्तक में तार्किक आधार पर लिखा गया है। ये तथाकथित विद्वान भूल जाते हैं कि अकबर एक विदेशी आक्रान्ता था, जिसका एकमात्र उद्देश्य अपने साम्राज्य का अधिक से अधिक प्रसार करना था। लेखक ने अनेक प्रश्न उठाए हैं। जैसे- क्या आक्रमणकारी को देश से धकेलना तत्कालीन शासकों का कर्तव्य नहीं था? कोई भी शासक अकबर के राज्य मंडल का सदस्य क्या इसलिए बना कि इससे देश की सेवा कर सकेंगे? अपने संकीर्ण लाभ के लिए क्या कायरता का परिचय नहीं दिया? क्या दासता को भी गौरव का प्रतीक मानना होगा? उपरोक्त



डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' द्वारा लिखित 'महाराणा प्रताप का युग' पुस्तक का आवरण पृष्ठ

इतिहासवेत्ता अकबर की 'पंथ निरपेक्षता' की नीति की प्रशंसा करते हैं, क्या यह उसकी पंथ निरपेक्षता थी कि उसने उदयपुर का नाम बदलकर मुहम्मदाबाद रखा? हल्दीघाटी युद्ध में मुस्लिम मानसिकता स्पष्ट हो जाती है, जब बदायूनी शत्रु अथवा मित्र राजपूत सैनिकों में भेद नहीं कर पाया तब उसके अपनी समस्या आसफ खां, जो सेनानायक मानसिंह के बाद सर्वोच्च पद पर था, के सामने रखने पर उससे यह निर्देश मिला है कि "तीर चलाते जाओ, जो भी मरेगा काफिर मरेगा और इसका लाभ इस्लाम को होगा।" क्या ये घटनाएं अकबर की 'पंथ निरपेक्ष

नीति' के अनुकूल थीं? अधीनस्थ राजपूतों के साथ जिस प्रकार का दुर्व्यवहार किया जाता था, वह 'दलपत विलास' पुस्तक व अन्य स्रोतों से स्पष्ट हो जाता है। 1568 में चित्तौड़ पर अधिकार करने के बाद 30 हजार से अधिक असैनिक जनता, जिसमें बच्चे, वृद्ध, नारी सभी थे, की नृशंस हत्या क्या अकबर के प्रति विश्वास उत्पन्न कर सकती है? इन प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रभावशाली रूप से दिये गए हैं। प्रताप का अगर कोई दोष था, तो यही कि वे मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे। उन्होंने स्वतंत्रता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए संघर्ष में त्याग, बलिदान, शौर्य एवं साहस का परिचय दिया। इसीलिए वह समस्त भारतीय जनता के हृदय सम्राट हो गए और प्रातः स्मरणीय मानकर उनका सम्मान किया जाने लगा। डॉ. गुप्ता ने तथ्यों का तार्किक विश्लेषण कर नई जानकारी दे देने का प्रयास किया है। वे प्रताप से संबंधित अन्य भ्रान्तियों का निराकरण एवं अन्य विषयों की तरफ ध्यान आकर्षित करने में भी सफल रहे हैं, जो शोध अध्येताओं को भविष्य में प्रताप पर किये जाने वाले अनुसंधान के लिए नई दिशा देंगे। डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' की 'महाराणा प्रताप का युग' 2010 में आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली से प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत ग्रंथ में डॉ. जुगनू ने कई नए तथ्य उजागर करते हुए प्रताप कालीन ताम्रपत्र आदि से सुसज्जित शोधपरक पुस्तक की रचना की है। डॉ. चन्द्रशेखर शर्मा की पुस्तक 'राष्ट्र रत्न महाराणा प्रताप' 2008 में आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली से प्रकाशित है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद स्पष्ट है कि सभी लेखकों ने प्रताप की महानता, स्वातंत्र्यप्रियता, वीरता को अपनी लेखनी के माध्यम से देश-समाज के सामने रखने का प्रयास किया है।

(लेखक आर.पी. जी. कॉलेज, भीण्डर, राजस्थान में प्राचार्य हैं)



'कई सेकुलर इतिहासकार प्रताप की 'अकबर विरोधी' नीति को राष्ट्रीय एकता में बाधक मानते हैं। लेकिन तथाकथित विद्वान यह भूल जाते हैं कि अकबर एक विदेशी आक्रान्ता था, जिसका एक मात्र उद्देश्य अपने साम्राज्य का अधिक से अधिक प्रसार करना था।



रूपहले परदे पर 'प्रताप'

महाराणा प्रताप पर एक-दो फिल्मों में ही बनीं, लेकिन उन्हें बनाने वाले बड़े फिल्मकार नहीं थे। शायद बड़े फिल्मकारों को लगा कि यदि फिल्म में महाराणा प्रताप को महान बताया गया तो अकबर 'वाले' हंगामा करेंगे इसलिए महाराणा प्रताप पर ज्यादा फिल्मों नहीं बनाई गईं। पर टीवी पर महाराणा पर बने धारावाहिकों को खूब सराहना मिली

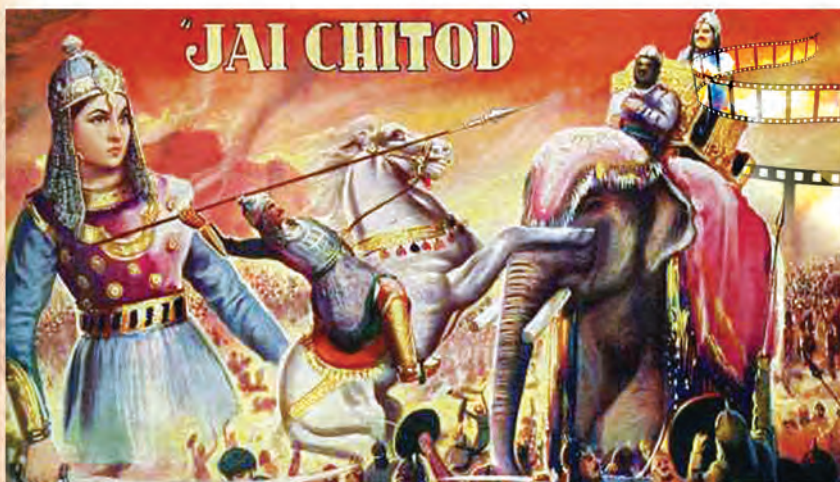
■ विष्णु शर्मा

अगर

आप आज के किसी युवा से अकबर के बारे में पूछेंगे तो वह फौरन आपको 'मुगल-ए-आजम' से लेकर 'जोधा-अकबर' तक फिल्मों और कई सीरियल बता देगा। लेकिन जब महाराणा प्रताप के बारे में पूछेंगे तो सोनी टीवी के एक सीरियल के अलावा शायद ही वह कुछ बता पाए। ऐसे में इस

लेख के जरिए हमने यह कोशिश की है कि आप जान सकें कि महाराणा प्रताप की वीरगाथा बड़े परदे और छोटे परदे पर अब तक कितनी कही गई है, उसकी जानकारी आपको पहुंचाई जाए। महाराणा प्रताप पर सबसे पहली फिल्म वाराणसी में पैदा हुए फिल्मकार भगवती प्रसाद मिश्र ने बनाई थी। 1925 में उन्होंने फिल्म 'राणा प्रताप' बनाई। फिल्म के निर्माण में पटेल ब्रदर्स और रॉयल आर्ट स्टुडियो का सहयोग लिया गया।

इस फिल्म के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं मिलती, लेकिन इतना तय है कि यह मूक (साइलेंट) फिल्म थी। आईएमडीबी (फिल्मों की मशहूर वेबसाइट) और बॉलीवुड इतिहास सहेजने वाली कई किताबों, मसलन 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा' (लेखक : आशीष राज्याध्यक्ष और पॉल विलरमेन) में इसका जिक्र मिलता है। डायरेक्टरी ऑफ इंडियन फिल्म मेकर्स एंड फिल्म्स (लेखक-संजीत



'जय चितौड़' फिल्म के दृश्य में शूरवीर महाराणा



'महाराणा प्रताप' फिल्म की एक झलक



'जोधा

अक



1961 में 'जय चित्तौड़' फिल्म आई थी। इसके निदेशक थे जसवंत झावेरी। फिल्म में महाराणा प्रताप की भूमिका में थे पी. जयराम। इसमें निरूपा रॉय भी थीं। फिल्म के गीत लिखे थे भरत व्यास ने और संगीत दिया एस.एन. त्रिपाठी ने।

होगे, क्योंकि जयंत देसाई उन्हें आगे बढ़ाने वाले थे।

1961 में 'जय चित्तौड़' फिल्म आई थी। इसके निदेशक थे जसवंत झावेरी। फिल्म में हीरो यानी महाराणा प्रताप की भूमिका में थे पी. जयराम। इसमें निरूपा रॉय भी थीं। फिल्म के गीत लिखे थे भरत व्यास ने और संगीत दिया था एस.एन. त्रिपाठी ने। इसके गाने आप आसानी से यूट्यूब पर ढूंढ सकते हैं। लता मंगेशकर की आवाज वाला मशहूर गीत 'ऐ पवनवेग से उड़ने वाले घोड़े..' हल्दी घाटी युद्ध से ठीक पहले के दृश्य में है, जिसमें निरूपा रॉय पहले चेतक को तिलक लगाती हैं और फिर महाराणा राणा प्रताप यानी पी. जयराम को। इसी तरह फिल्म में आशा भोंसले की आवाज में महाराणा की शान में भी एक गीत है जिसके बोल हैं, 'हो जियो जियो महाराज, धन्य धन्य मेवाड़पति'। एक गीत मन्ना डे की आवाज में भी है, जिसके बोल हैं—'चिंगारी आज बनी ज्वाला, ज्वाला

अम्बर तक'। ये सभी गीत आप यूट्यूब पर देख सुन सकते हैं।

राणा प्रताप का किरदार तो थोड़ी-बहुत देर के लिए अकबर से जुड़ी कुछ फिल्मों में हो सकता है। यह अलग बात है कि हितिक रोशन और ऐश्वर्या राय की फिल्म 'जोधा अकबर' में महाराणा का किरदार नहीं था। लोग कह सकते हैं कि अकबर का महाराणा से टकराव बाद के दिनों में हुआ था। ऐसे में दिलीप कुमार और मधुबाला की 'मुगल-ए-आजम' में उन्हें उनका रोल होना चाहिए था, लेकिन उस फिल्म में भी निदेशक ने महाराणा प्रताप का किरदार लेने का जोखिम मोल नहीं लिया। जोखिम यह था कि अगर आप अकबर को महानायक के तौर पर प्रस्तुत कर रहे हैं, तो महाराणा को कमतर दिखाना पड़ेगा, जिसे देश की जनता बर्दाश्त नहीं करती। ऐसे में उनके किरदार को ना छूना ही बेहतर था। लेकिन बाद के फिल्मकारों ने तो महाराणा प्रताप के

फिल्म में ईश्वर लाल, मुबारक, खुशींद, सीता देवी, रेवाशंकर, नूरजहां, भगवान दास जैसे कलाकारों ने काम किया था। फिल्म के गीत लिखे थे स्वामी रामानंद ने और संगीत राम गांगुली ने दिया था। फिल्म इतिहास से जुड़ी सभी किताबों में इस फिल्म का जिक्र है, लेकिन इस बात का नहीं कि इस फिल्म में महाराणा प्रताप की मुख्य भूमिका किसने निभाई थी। हालांकि अशोक राज की किताब 'हीरो' के खंड-1 में इस बात का इशारा मिलता है कि ईश्वर लाल महाराणा की भूमिका में रहे



अकबर' धारावाहिक में महाराणा की भावप्रवण भूमिका में कलाकार 'भारत का वीर पुत्र, महाराणा प्रताप' धारावाहिक में एक भील योद्धा से बात करते महाराणा



तथ्य यह है कि...

27 मई, 2013 से सोनी टीवी पर मशहूर टीवी प्रोडक्शन हाउस कोटिलो की ओर से अभिमन्यु राज सिंह ने महाराणा प्रताप की जिंदगी पर 'भारत का वीर पुत्र, महाराणा प्रताप' नाम से एक धारावाहिक शुरू किया। पहले प्रकरण में महाराणा प्रताप के किरदार के बारे में बताने के लिए बतौर सूत्रधार अमिताभ बच्चन की आवाज का इस्तेमाल किया गया। यह धारावाहिक 10 दिसंबर, 2015 तक चला और करीब 539 प्रकरण दिखाए गए।

किरदार को महानायक बनाने में भी जोखिम समझा, और उनको लेकर कोई भी फिल्म नहीं बनाई गई। 1961 की 'जय चित्तौड़' के 51 साल बाद यानी 2012 में एक फिल्म की जानकारी मिलती है, इसका नाम है 'महाराणा प्रताप, द फर्स्ट फ्रीडम फाइटर'। लेकिन फिल्मी दुनिया के किसी बड़े फिल्मकार ने इसे नहीं बनाया, बल्कि महाराणा के चाहने वालों ने बनाया। डॉ. प्रदीप कुमावत ने ही कहानी लिखी, निदेशक भी वही थे, कुलदीप चतुर्वेदी मुख्य भूमिका में थे। फिल्म का संगीत एलबम टी-सीरीज से आया, जिसे तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील ने रिलीज किया। फिल्म के लिए रूप कुमार राठौड़, साधना सरगम, भूपिंदर सिंह आदि ने गीत गाए, जगजीत सिंह का एक गीत 'याद आएगा' भी इस फिल्म में है। लेकिन कोई बड़ा चेहरा न होने के चलते यह फिल्म राजपूताना के कुछ इलाकों में ही प्रदर्शित हो सकी।

ऐसे में यह सवाल उठता है कि क्यों महाराणा प्रताप जैसे किरदार पर हर कोई फिल्म बनाने से डरता है, जबकि उनकी जिंदगी में सौतेली मां, सौतेले भाई, पत्नियां, बेटे, चेतक, जीवन का संघर्ष,

घास की रोटी, मेवाड़ की आन-बान-शान, उनके कवच, भाले और गोरिल्ला पद्धति की रोमांचक युद्ध कला और उदयपुर जैसा खूबसूरत शहर और खतरनाक ढंग के दर्रे और किले भी हैं, जो एक बॉलीवुड फिल्म के लिए अच्छा मसाला साबित होंगे। उससे भी ज्यादा है एक ऐसा नायक, जो तब भी नहीं झुका, जबकि पूरा देश झुक गया। यहां अच्छे संवाद की संभावना बनती है। चेतक की मौत के बाद गद्दार भाई का उन्हें अपना घोड़ा देना भावना के पारावार पर ले जा सकता है। लेकिन बॉलीवुड के निर्देशकों को यह डर है कि अगर महाराणा प्रताप हीरो होंगे, महानायक होंगे तो खलनायक कौन होगा? वह होगा, जिसे देश के नेताओं ने सबसे बड़ा 'नायक' बना दिया है। लेकिन 'रक्तरंजित' जैसे एबीपी न्यूज के शो, और 'पद्मावत' जैसी फिल्म के बाद उन्हें समझना होगा कि अब यह जोखिम नहीं रह गया है, जनता सच जानने के लिए पर्याप्त वयस्क हो चुकी है।

टीवी पर शायद महाराणा प्रताप का किरदार सबसे पहले पुनीत इस्सर ने निभाया होगा। जब श्याम बेनेगल ने 1988 में 'भारत एक खोज' धारावाहिक का

निर्देशन किया था, तो 53 कड़ियों की योजना बनाई गई थी। जिसकी 32वीं कड़ी में राणा प्रताप का किरदार रखा गया था। अकबर शृंखला का यह पहला एपिसोड था। अकबर का किरदार कुलभूषण खरबंदा ने निभाया था तो महाराणा प्रताप का किरदार पुनीत इस्सर को दिया गया था। आप यूट्यूब पर आसानी से इस एपिसोड को ढूँढ सकते हैं। वैसे महाराणा प्रताप को लेकर जो टीवी सीरियल बने उनमें प्रमुख हैं 'जोधा अकबर' सीरियल, जिसे एकता कपूर की बालाजी फिल्म्स ने बनाया। यह जीटीवी पर 18 जून, 2013 से प्रसारित होना शुरू हुआ। 2015 तक इसके 500 से भी अधिक एपिसोड प्रसारित होते रहे। इस सीरियल में महाराणा प्रताप का किरदार अनुराग शर्मा नाम के टीवी कलाकार ने अदा किया था।

27 मई, 2013 से सोनी टीवी पर मशहूर टीवी प्रोडक्शन हाउस कोटिलो को अभिमन्यु राज सिंह ने महाराणा प्रताप की जिंदगी पर 'भारत का वीर पुत्र, महाराणा प्रताप' नाम से एक सीरियल शुरू किया। पहले एपिसोड में महाराणा प्रताप के किरदार के बारे में बताने के लिए बतौर सूत्रधार अमिताभ बच्चन की आवाज का इस्तेमाल किया गया। 10 दिसंबर, 2015 तक यह सीरियल चलता रहा, करीब 539 एपिसोड दिखाए गए। हाल ही में 'आरंभ' नाम से एक सीरियल स्टार प्लस पर शुरू हुआ था, जिसमें तनूजा, रजनीश दुग्गल, तेज सप्रू, शाहबाज खान जैसे बॉलीवुड कलाकार भी काम कर रहे थे, लेकिन इसे 24 एपिसोड्स के बाद बंद करना पड़ा, क्योंकि लोगों को यह पसंद नहीं आया, टीआरपी नहीं आई। ऐसे में 'भारत का वीर पुत्र, महाराणा प्रताप' अगर 539 एपिसोड तक चलाया जाता है, तो इसका मतलब है कि वह लोगों को पसंद आ रहा था, चैनल को फायदा हो रहा था और यह भी कि लोगों के दिलों में महाराणा प्रताप का गहरा सम्मान है। इस सीरियल के प्रति प्रताप के



1961 की 'जय चित्तौड़' के 51 साल बाद यानी 2012 में एक फिल्म की जानकारी मिलती है, उसका नाम है 'महाराणा प्रताप, द फर्स्ट फ्रीडम फाइटर'। लेकिन इस फिल्म को फिल्मी दुनिया के किसी बड़े फिल्मकार ने नहीं, बल्कि महाराणा के चाहने वालों ने बनाया था।